श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित

बारसाणुपेक्खा

आचार्य श्री वि[illegible] जी

अनुवादक
आचार्य विराग सागर

संयोजन:
मुनि विशल्य सागर

श्री वीतरागाय नम:

प्रस्तावना

आज से कुछ समय पूर्व तक अधिकांत: भारतीय पाश्चात्य विद्वान भारतीय संस्कृति धर्म दर्शन एवं साहित्य को मूल वेदों में देखने के अभ्यस्त थे किन्तु मोहन जोदड़ों हड़प्पा से प्राप्त सामग्री आदि साक्ष्यों के अध्ययन के बाद चिन्तकों के चिन्तवन की दिशा ही बदल गई अब यह पूर्ण प्रमाणित हो चुका है कि श्रमण संस्कृति वैदिक संस्कृति से पूर्ण प्रथम एवं प्राचीन है।

श्रमण संस्कृति भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रभाषमान है साहित्यिक पुरातात्विक साक्ष्यों भाषा वैज्ञानिक एवं शिला लेखीय आदि अन्वेषणों के आधार पर अनेक विद्वान अब यह मानने लगे हैं कि आर्यों के आगमन से पूर्व भारत में जो संस्कृति थी वह श्रमण संस्कृति या आर्हत् संस्कृति होनी चाहिए। श्रमण संस्कृति का भारत देश में ही नही विश्व में अपनी त्याग तपस्या श्रम: आध्यात्मिक अहिंसा आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रमण संस्कृति अनादि काल से अपने आप में प्रवाहित हो रही है वर्तमान अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभ देव द्वारा प्रवाहित हुयी थी ऋषभ देव का वर्णन श्रमण एवं वैदिक इन दोनों ही संस्कृतियों में बड़े आदर से किया गया है जिन्होने इस युग में असि, मसि कृषि विद्या वाणिज्य शिल्प इन षट कर्मों का प्रवर्तन किया था भगवान आदिनाथ के ही ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर इस देश का नाम भारत बर्ष पड़ा। इस प्रकार ऋषभ देव से लेकर चौबीस तीर्थंकरों की परम्परा में अंतिम तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान महावीर स्वामी जिन्होंने प्राणी मात्र को जीओ और जीने दो का संदेश दिया। आज इतिहास को पूर्ण न जानने वाले चन्द व्यक्ति श्रमण जैन संस्कृति को भगवान महावीर स्वामी से प्रारंभ मानते हैं यह उनका भ्रम है।

महा श्रमण वर्द्धमान तीर्थंकर के पावन तीर्थ में श्रमण संस्कृति के गौरव पुन्जतत्त्व ज्ञानी महामनीषी बहु दिगम्बराचार्यों ने प्राय: सभी प्राचीन भारत भाषाओं एवं सभी विद्याओं में अपने श्रेष्ठ सद साहित्य के माध्यम से भारत साहित्य और चिन्तन परम्परा में भी वृद्धि की है।

आचार्य कुन्द- कुन्द स्वामी :- तीर्थंकर भगवान महावीर गौतम स्वामी की उत्तरवर्ती आचार्य परम्परा में जिनका नाम गौरव के साथ लिया जाता है जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व ने जन जन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया अध्यात्म की मूर्ति जिनवाणी में मंत्र शक्ति छुपी हुई है जो एक बार आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी की वाणी का पान कर लेता वह कुन्द कुन्द मय हो जाता है आचार्य श्री का साहित्य सिंहनी का दुग्ध है स्वर्ण पात्र में ही धारण किया जा सकता है। आचार्य श्री के साहित्य को जानने के पूर्व नय का ज्ञान होना आवश्यक है जिसे आलाप पद्धति का ज्ञान नहीं है उसे कुन्द कुन्द भगवान की देशना नही सुननी चाहिए अध्यात्म ग्रन्थों के अध्ययन के पूर्व सिद्धांत ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण आवश्यक है। आचार्य श्री ने उभय नय का कथन किया है निश्चय नय व्यवहार नय दोनों नयों को जानने वाला ही जिनेन्द्र वाणी को समझ सकता है। किसी एक नय को मात्र स्वीकार करने वाला कभी भी जिन देशना सुनने का पात्र नहीं है। न वह वक्ता कहलाने का पात्र है। आचार्य श्री अमृत चन्द्र स्वामी ने ग्रन्थराज पुरूषार्थ सिद्ध उपाय में कहा भी है-

व्यवहार निश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायः स एव फलमविकले शिष्यः ॥८॥

अर्थात् :- जो वास्तविक रूप से व्यवहार नय और निश्चय नय दोनों को जानकर मध्यस्थ हो जाता है यानी कि किसी एक नय का सर्वथा एकांती न बनकर अपेक्षा दृष्टि से दोनों नयों को स्वीकार करता है वह ही उपदेश सुनने वाला (सुनाने वाला) उपदेश के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है। मात्र निश्चय नय को ही स्वीकार करता है वह मिथ्या दृष्टि है उभय नय का कथन करने वाला ही वास्तविक ज्ञानी है सम्यक्दृष्टि है निरपेक्ष कथन मिथ्या होता है ।

आचार्य भगवन समन्त भद्र स्वामी ने देवागम स्त्रोत्र में कहा है निरपेक्षा नया मिथ्या जो नय अपेक्षा से रहित होता है वह मिथ्या नया कुनय है सुनय नहीं जैनागम सुनय को स्वीकार करता है कुनय को नहीं। जब भी कथन किया जाय पात्र देखकर ही कथन होना चाहिए। आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी ने स्वयं अपने ग्रन्थ राज समय पाहुण में कथन किया है।

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्ज भासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसण मसक्कं ॥८॥ समयसार

अर्थात:- जिस प्रकार किसी अनार्य (अनाड़ी) पुरूष को उसकी भाषा में बोले बिना नहीं समझाया जा सकता है उसी प्रकार परमार्थ का उपदेश भी व्यवहार के बिना नहीं हो सकता। अर्थात परमार्थ को समझाने के लिए व्यवहार नय का अवलंबन किया जाता है। महान आचार्यो की परम्परा में दो हजार वर्ष पूर्व युग प्रधान आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी ऐसे प्रखर प्रभा पुञ्ज के समान श्रेष्ठ आचार्य हुये जिनके महान आध्यात्मिक चिन्तन से सम्पूर्ण भारत मनीषा प्रभावित हुयी। यही कारण रहा कि इसके पश्चात होने वाले आचार्यों ने अपने आप को उनकी परम्परा का आचार्य मानकर गौरव माना उनकी विशुद्धचर्या तथा ज्ञान गरिमा को श्रेष्ठ स्वीकार कर मुक्त कंठ से गुणगान किया।

मंगलं भगवान्वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्द कुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलम् ॥

अर्थात् :- तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी मंगल स्वरूप है उनके प्रथम गणधर गौतम स्वामी मंगलात्मक है आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी जैसे समर्थ आचार्यों की आचार्य परम्परा मंगलमय है। तथा प्राणी मात्र का कल्याण करने वाले जैन धर्म सभी के लिए मंगलकारक है।

शिला लेखों के अनुसार इनका जन्म स्थान कोणु कुन्दे प्रचलित नाम कोंड (कुन्द कुन्द पुरम) तहसील है जो कि आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले में कौण्ड कुन्दपुर अपरनाम कुरूमरई माना जाता है इनका जन्म शार्वरी नाम संवतसर माघ शुक्ला ५ ईसा पूर्व १०८ (वी.सी.) में हुआ था। इन्होंने ११ वर्ष की अल्पायु में ही श्रमण दीक्षा ले ली थी तथा ३३ वर्ष तक मुनिपद पर रहकर ज्ञान और चारित्र की सतत साधना की ४४ वर्ष की आयु (ईसा पूर्व ६४) में चतुर्विध संघ ने इन्हें आचार्य पर पर प्रतिष्ठित किया। ५१ वर्ष १० माह १५ दिन तक इन्होंने आचार्य पद को सुशोभित किया। इस प्रकार इन्होंने कुल ९५ वर्ष १० माह १५ दिन की दीर्घायु पायी और ईसा पूर्व १२ में समाधिमरण पूर्वक मृत्यु पाकर स्वर्गारोहण किया।

ग्रन्थ :- आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी के ग्रन्थ पाहुण कहे जाते हैं। पाहुण अर्थात् प्राभृत जिसका अर्थ भेंट हैं आचार्य जिनसेन महाराज ने की तात्पर्यवृत्ति में कहा है जैसे देवदत्त नाम का कोई व्यक्ति राज्य का दर्शन के लिए कोई सार भूत वस्तु राजा को देता है तो उसे प्राभृत भेंट कहते है। उसी प्रकार परमात्मा के आराधक पुरूष के लिए निर्दोष परमात्मा रूपी राजा के दर्शन कराने के लिए यह शास्त्र भी प्राभृत भेंट हैं। वर्तमान आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी कृत पंचास्तिकाय, समयपाहुण, पवयणसार अटठपाहुण (दसणपाहुण, चरित्र पाहुण, सुतपाहुण, बोध पाहुण, भाव पाहुण, मोक्ख पाहुण, शील पाहुण तथा लिंग पाहुण) बारसाणु पेक्खा भवित संग्रहों जैसे महान ग्रन्थों की रचना की इनके अतिरिक्त रयणसार को भी कुछ विद्वान उनकी कृति मानते हैं। तमिल वेद के रूप में सुविख्यात 'तिरूक्कुरं' (कुरलकाव्य) नामक रीतिग्रन्थ भी इनकी कृति माना जाता है। ऐसी मानता है कि आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी ने चौरासी पाहुण ग्रन्थों की रचना की थी। उपलब्ध पाहुणों के नामों के अतिरिक्त अब इन चौरासी में से कुछ पाहुणों के नामों के उल्लेख भी मिलते है। प्राकृत एवं जैन साहित्य के सूत्रसिद्ध मनीषी डा. ए. एन. उपाध्ये ने निम्न लिखित तैंतालीस पाहुणों की सूचना तैयार कर प्रस्तुत की है।

(१) आचार पाहुण (२) आलाप पाहुण (३) अंगसार पाहुण (४) आराहणा सारपाहुण (५) बंध सार पाहुण (६) बुद्धि या बोध पाहुण (७) चरण पाहुण (८) चूलिया पाहुण (९) चूर्णि पाहुण (१०) दिव्य पाहुण (११) द्रव्य सार पाहुण (१२) दृष्टि पाहुण (१३) इव्यत्र पाहुण (१४) जीव पाहुण (१५) जाणिसार पाहुण (१६) कर्म विपाक पाहुण (१७) कर्म पाहुण (१८) क्रिया सार पाहुण (१९) क्षयण सार या क्षयण पाहुण (२०) लब्धि सार पाहुण (२१) लोय पाहुण (२२) नय पाहुण (२३) नित्य पाहुण (२४) नोकम्म पाहुण (२५) पंच वर्ग पाहुण (२६) पयड्ड पाहुण (२७) पय पाहुण (२८) प्रकृति पाहुण (२९) प्रमाण पाहुण (३०) सलमी पाहुण (३१) संणडण पाहुण (३२) समवाय पाहुण (३३) षटदर्शन पाहुण (३४) सिद्धान्त पाहुण (३५) सिक्खा पाहुण (शिक्षा) पाहुण (३६) स्थान पाहुण (३७) तत्वसार पाहुण (३८) तोप (लोय) पाहुण (३९) ओघट पाहुण (४०) उत्पाद पाहुण (४१) विद्या पाहुण (४२) वस्तु पाहुण (४३) विध्यि या विध्य पाहुण।

संयम प्रकाश नामक ग्रन्थ में उपयुक्त पाहुडों के अतिरिक्त नाम कम्म पाहुण, योग सार पाहुण, निताय पाहुण, उद्योत पाहुण, सिखा पाहुण तथ्य ऐयन्त पाहुण नाम प्राप्त होते हैं।

इतना विपुल साहित्य का सृजन आचार्य की बहुमुखी तीक्षण प्रतिभा ज्ञान कोष का ही फल है। पर दुर्भाग्य है आज हमारे पा उपर्युक्त ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसका कारण या हमारी समाज की साहित्य के प्रति उदास वृत्ति या फिर विरोधी कारणों से क्षति हुयी साहित्य दर्शन के प्राण करते हैं। आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी ने दिगम्बर वीतराग मार्ग के बहुश्रुत प्रदान किया यह हम सभी पर आचार्य श्री की असीम कृपा दृष्टि रही है। अभी क्षण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी ने अनेक पाहुण ग्रन्थों के साथ अनुप्रेक्षा ग्रन्थ भी लिखा बारसाणु पेक्खा ग्रन्थ आचार्य श्री की एक अनुपम कृति है। जिसमें बारह भावनाओं का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। वैराग्य को जन्म देने वाली ये बारह भावनायें हैं। जिन्हें आगम में माँ की उपमा दी है जैसे माँ पुत्र को जन्म देती है। एवं रक्षा करती है उसी प्रकार मुमुक्षु को वैराग्य वृद्धि का कारण एवं वैरागी के वैराग्य की रक्षा कवच ये अनुप्रेक्षायें हैं। तत्त्वार्थवार्तिक जी में आचार्य श्री भट्ट अंकलक देव ने अनुपेक्षा की परिभाषा बताते हुए कहा-

शरीरादीनां स्वभावानु चिन्तन पेक्षा वेदितव्या:
भावादि साधन: आकार:

अर्थात् :- शरीर आदि के स्वभाव का बार बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है अनुप्रपूर्व धातु से भाव साधन से आकर होने से अनुप्रेक्षा शब्द बनता है। ये अनुपेक्षा अनुप्रेक्षायें ही प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण आलोचना तथा समाधि है अत: इनका हमेशा चिन्तन करना चाहिए।

बारस अणुपेक्खा पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं।
ओलायणं समाहि तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ।।८७।। (बारसाणुपेक्खा)

आचार्य श्री ने अनुपेक्षाओं का वर्णन करते हुए कहा है-

मोक्ख गया जे पुरिसा अणाइकालेण बारअणु पेक्खं।
परिभाविऊग सम्मं पणमामि पुणो पुणो तेसिं ।।८९।। (बारसाणु पेक्खा)

अर्थ - अनादि काल से आज तक जितने भी पुरुष मोक्ष गये हैं वे सब इन बारह अनुप्रेक्षाओं को अच्छी तरह से या करके ही गये हैं। उन सभी सिद्धों को विधि पूर्वक बारम्बार नमस्कार करता हूँ। इस ग्रन्थ में आचार्य श्री बारह भावना का सरल सुबोध शैली में वर्णन किया है।

अद्धुव मसरण मेगत्त मण्णसंसार लोग मसुचित्तं।
आसव संवर णिज्जर धर्म्मं बोहिंच चिंतेज्जो ॥२॥

अर्थ :- अध्रुव (अनित्य) अशरण, एकत्व, संसार, लोक, आशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म और बोधि इनका चिंतन करो आचार्य श्री उमा स्वामी महाराज ने इन बारह अनुपेक्षाओं का क्रम तत्त्वार्थ सूत्र में इस प्रकार दिया है।

अनित्याशरण संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव संवर निर्जरा लोक बोधि दुर्लभ धर्म स्वाख्यातत्त्वानुचिन्तन मनु प्रेक्षा: ॥८१९॥ तत्त्वार्थ सूत्र

अर्थ :- अनित्य, अशरण संसार, एकत्व, अन्यत्त्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर निर्जरा, लोक बोधि दुर्लभ, और धर्मस्वाख्यातत्व का बार बार चिन्तवन करना अनुप्रेक्षायें हैं।

आचार्य श्री अमृत चन्द्र महाराज ने परुषार्थ सिद्ध उपाय ग्रन्थ जी में आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी आचार्य श्री उमा स्वामी महाराज के क्रम से प्रथक क्रम में रखा है। आचार्य श्री वट्टकेर महाराज द्वारा विराचित मूलाचार जी में बारसाणु पेक्खा के अनुसार ही क्रम है। अनुप्रेक्षाओं का आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी आचार्य श्री अमृत चन्द्र स्वामी के नाम समानरूप से दिये हैं आचार्य उमा स्वामी ने अध्रुव के स्थान पर अनित्य नाम रखा है प्रथम अनुपेक्षा का आचार्य अमृत चन्द्र स्वामी ने संसार भावना को जन्म नाम से कहा है। पुरुषार्थ सिद्ध उपाय में निम्न कारिका में अनुप्रेक्षा की है।

अध्रुवमशरण मेकत्व मन्यता ऽशौच मास्रवो जन्म।
लोकवृष बोधि संवर निर्जरा: सतत मनुपेक्ष्या: ॥२०५॥ पु. उ.

(१) अनित्य भावना:- सामग्री, इन्द्रियां, रूप, यौवन, जीवन बल तेज घर शासन आसन वर्तन आदि सब अनित्य है। ऐसा चिंतवन करें प्रथम अध्रुव अनुप्रेक्षा हैं।

(२) अशरण भावना:- घोड़ा, हाथी, रथ, मनुष्य, बल वाहन, मन, औषधि, विद्या, माया नीति और बन्धु वर्ग ये मृत्यु के भय से रक्षक नहीं है। ऐसा चिंतवन करना अशरण अनुप्रेक्षा है।

(३) एकत्व भावना:- अकेला ही यह जीव कर्म करता है। एकाकी ही दीर्घ संसार में भ्रमण करता है। अकेला ही जन्म लेता है। अकेला ही मरता है। इस प्रकार से एकत्व का चिंतन करता एकत्व अनुप्रेक्षा है।

(४) **अन्यत्व भावना:-** यह शरीर आदि भी अन्य है। पुन: जो बाह्य द्रव्य हैं। वे तो अन्य ही हैं। आत्म ज्ञान दर्शन स्वरूप है। इस प्रकार अन्यत्व का चिंतन अन्यत्व अनुप्रेक्षा है।

(५) **संसार भावना:-** यह संसारी जीव जिनमार्ग को न जानता हुआ प्रचुर जन्म मरण युक्त बुढ़ापा भय से युक्त द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव, भव रूप पांच प्रकार के संसार में दीर्घकाल तक भ्रमण करता है। ऐसा चिंतवन करना संसार अनुप्रेक्षा है।

(६) **लोक भावना:-** अधोलोक वैत्रासन के समान है। मध्य लोक झल्लरी के समान है। और ऊर्ध्वलोक मृदंग के समान है। एवं चौदह राजू प्रमाण इस लोक की ऊंचाई है। इस लोक में जीव अपने कर्मों द्वारा निर्मित सुख, दुख का अनुभव करते हैं। भयानक अनन्त भय समुद्र में पुन: पुन: जन्म मरण करते हैं। ऐसा चिंतवन करना लोकानुप्रेक्षा है।

(७) **अशुभ अनुप्रेक्षा:-** (अशुचि भावना) मॉस अस्थि कफ वसा रुधिर चर्म पित्त ऑत मूत्र इन अपवित्र पदार्थों की झोपड़ी रूप बहुत प्रकार के दुख और रोगों के स्थान स्वरूप इस शरीर को अशुभ ही जानो ऐसा चिंतवन करना अशुभ अशुचि अनुप्रेक्षा है।

(८) **आस्रव भावना:-** हिंसा आदि आस्रव द्वार से पाप का आना होता है। उससे निश्चित ही विनाश होता है।

जैसे कि आस्रव से सहित नौका समुद्र में डूब जाती है। इस प्रकार बहु प्रकार का कर्म दुष्ट है जो कि ज्ञानावरण आदि से यह आठ प्रकार का है। तथा दुख रूप है। फलवाला है ऐसा चिंतवन करना आस्रव अनुप्रेक्षा है।

(९) **संवर भावना:-** मिथ्यात्व अविरति, कषाय और योग इनसे आत्मा में जो कर्म आते हैं। वे क्रमश: सम्यग्दर्शन, विरति, इन्द्रिय निग्रह और योग निरोध इन कारणों से नहीं आते हैं। रुक जाते हैं। इस प्रकार कर्मों का आना आस्रव और कर्मों का रुकना संवर हैं।

(१०) **निर्जरा भावना:-** जिनका आस्रव रुक गया है जो तपश्चर्या से युक्त होते हैं उनकी निर्जरा होती है। जिनके सर्वकर्म निर्जीर्ण हो चुके है। ऐसा जीव जन्म मरण के बंधन से छूटकर अनन्त सुख को प्राप्त कर लेता है। इस कारण निर्जरा अनुप्रेक्षा का चिंतवन करना चाहिए।

(११) **धर्मानुप्रेक्षा:-** संसार मध्य विषम दुर्ग इस भव वन में भ्रमण करते हुए मैंने बड़ी मुश्किल से जिनवर कथित प्रधान धर्म प्राप्त किया है। इस प्रकार चिंतवन करना धर्मानुप्रेक्षा है।

(१२) **बोधि दुर्लभ भावना:-** अनन्त संसार में जीवों को मनुष्य पर्याय दुर्लभ है। जैसे लवण समुद्र में युग अर्थात् जुवां और समिला अर्थात् सैल का संयोग दुर्लभ है। उत्तम देश कुल में जन्म, रूप, आयु, आरोग्य, शक्ति विनय धर्मश्रवण ग्रहण बुद्धि और धारणा ये भी इस लोक में दुर्लभ हैं। ऐसी भावना बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा हैं।

इस प्रकार ये बारह अनुप्रेक्षायें वैराग्य बुद्धि के लिए वायु के तुल्य हैं। जैसे जलती हुयी अग्नि की वृद्धि में वायु कारण होती है। आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी के प्राप्त ग्रन्थों में यह प्रथम ग्रन्थ हैं। जिसमें आचार्य श्री ने अपना नाम उल्लेखित किया है।

इदि णिच्छयववहारं जं भणियं कुंद मुणिणाहे ।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं ॥९१॥ बा.अनु.

अर्थात् इस प्रकार से मुनियों के नाथ/नायक आचार्य श्री कुंद-कुंद ने निश्चय और व्यवहार नय से बारह अनुप्रेक्षाओं को कहा है उसे जो शुद्ध मन से भाता है चिंतन करता है वह परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

इस प्रकार महामनीषी आचार्य महाराज ने बारसाणु पेक्खा ग्रन्थ का का सृजन कर भारतीय साहित्य को समृद्धशाली बनाया। छतरपुर में ग्रीष्म वाचना के समय आचार्य श्री हम लोगों को बारसाणु पेक्खा ग्रन्थ का स्वाध्याय कर रहे थे तभी मेरी भावना बन चुकी थी कि ऐसे महान ग्रन्थ की सरल शब्दार्थ भावार्थ सहित प्रकाशन होना चाहिए। इस भावना को लेकर दि. जैन तीर्थ स्थली करगुवाँ (झाँसी) में चातुर्मास के समय मैंने आचार्य श्री के चरणों में पत्र के माध्यम से प्रार्थना प्रेक्षित की कि भिण्ड वर्षा योग में आप ग्रन्थ का सरल भाषा में अनुवाद करने की कृपा करें। आचार्य श्री ने प्रार्थना स्वीकार कर हम लोगों पर असीम कृपा की। यह उनकी करुणा हम लोगों के प्रति है। साथ ही मुझे आज्ञा दी कि विशुद्ध सागर प्रस्तावना लिखें ऐसे महान ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखना बहुत बड़ी बात है। पर आचार्य श्री की कृपा से लिखना संभव हो सका उसमें जो कमी है वो मेरी है जितनी भी अच्छाइयां है। वे सब गुरू देव की हैं।

वीर निर्वाण संवत २५२६

ऊं नमः सिद्धेभ्याः

मुनि विशुद्ध सागर

पोषशुक्ल पूर्णिमा (शील वाचना)
चिरगॉव (झाँसी) उ.प्र.

सन्दर्भित ग्रन्थ सूचि

१. अष्ट पाहुड़ जी भूमिका ले. डा. फूलचन्द्र जैन प्रेमी प्रकाश-भारतीय अनेकान्त विद्वत परिषद सोनागिरी

२. समयसार जी - आचार्य श्री कुन्द कुन्द सागर विरचित

३. तत्त्वार्थ वार्तिक - भट्ट आचार्य श्री अकलंक देव विरचित

४. तत्त्वार्थ सूत्र जी - श्री उमा स्वामी महाराज विरचित

५. पुरुषार्थ सिद्धि उपाय - आचार्य श्री अमृत चन्द सूरी विरचित

६. मूलाचार जी - आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी विरचित

७. बारसाणु पेक्खा - आचार्य श्री कुंद कुंद स्वामी

प्राक-प्रमेय

विलासित की भाग-दौड़ में मानव-अंधा होकर तीव्र गति से पतन के गर्त में फिसल रहा है, यानि वासना-कामना की ज्वाला में झुलसता हुआ निज का घात करने में तुला है, और इसका कारण (Reason) है-आध्यात्मिकता का अभाव। आध्यात्म से शून्य जीवन महाघातक सिद्ध होता है। यदि जिन्दगी में आध्यात्म का समावेश नहीं, तो जिन्दगी महाहिंसक, निर्दयी, स्वघातकी का परिवेष धारण कर लेती है। आध्यात्म से रिक्त जिंदगी भोगी-विलासी बनकर-निजात्मा की संहारक साबित हो जाया करती है, और ऐसी जिंदगी पशु से भी बदतर (Worst) यानि नारकी तुल्य है। इन्हीं दुष्परिणामों, दुष्प्रवृत्तियों से सम्हलने हेतु एवं अंतरंग में आध्यात्म का गीत-संगीत (Music) के लिए, आज से कई वर्षों पूर्व महाश्रमण-महामनीषी, महानवेत्ता, परम-आध्यात्म योगी आचार्य भगवन् कुन्द कुन्द देव जी ने द्वितीय श्रुतस्कंध का दिव्य आलोक सारे भू मण्डल में आलोकित कर जगती के मानवों को एक अद्वितीय महानिधि परमोपकारी आध्यात्म की लेखनी-शैली प्रदान की यानि, एक वह दिव्य प्रकाश दिया जिसमें निज को देख निजात्म का आनंदामृत का रसास्वादन किया जा सकात है। वास्तव में उनकी लेखनी स्वयमेव उनकी आध्यात्मचर्या की साक्षी बन संदेश वाहक रूप (Messanges) में खड़ी होकर कहने लगती है कि हे श्रमण! यदि तू शुद्धात्मा का आनंद चाहता है, श्रमणत्व सुख की चाह है, तो समस्त सांसारिक द्वंदों से परे होकर निज में डुबकी लगा।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी विरचित वाङ्मय जहाँ एक और तत्त्व विवेचन की गहराई से आत्म-विद्या का बोध कराता है, तो वहीं आत्म-साधना के पथ में आचरण की श्रेष्ठता का निष्कर्ष भी प्रदान करता है, यही कारण है कि उनके द्वारा लिपिबद्ध ग्रंथ अंतरंग को खोलकर मोक्षमार्ग को प्रशस्त करते हैं।

वह एक ऐसे आचार्य हुए, जिन्होने साधना के पथ में शैथिल्यता को जरा भी नहीं स्वीकारा। निर्ग्रन्थता ही मुक्तिमार्ग है

णवि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ अष्टपाहुड ॥

यह उद्घोष कर उन्होनें विभिन्न मत-मतान्तरों का सुयुक्तियों से युक्त खंडन किया एवं तीर्थेश भगवंतों की परम-वीतरागी परंपरा को कायम रख, सर्वजन हिताय महिमा-मण्डित किया ।

धन्य हैं ऐसे प्रबद्ध चेतना के धनी आचार्य प्रवर जिनके द्वारा सृजित साहित्य, मुक्ति-पथिकों के आलोकदायी दीपस्तंभ हैं ।

समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, नियमसार आदि, जैसे महान ग्रंथ शुद्धात्म-तत्त्व में अवगाहन की और प्रबल प्रेरणास्पद सिद्ध होते हैं वहीं *बारसाणु पेक्खा* जैसा अनुपम ग्रंथ आध्यात्म रस को पाने हेतु *वैराग्य* की शिक्षा देता है ।

शुद्धात्मानुभूति का रसास्वादन करने के लिऐ जिस परमध्यान की अनिवार्यता बतलाई गई है, उसी ध्यान को पाने के लिए भावना-भाना आति-आवश्यक है । इसी भावना का नाम अनुपेक्षा है, जो कि बारह है । *बारसाणुपेक्खा ग्रंथ* इन्हीं बारह अनुपेक्षाओं को प्रतिपादन करने वाला है । अनुपेक्षा यानि अनु+प्रेक्षा, *पेक्षा* अर्थात-ध्यान अनु यानि समीपस्थ (निकट) । जो ध्यान के निकट ले जाए वह है अनुप्रेक्षा ।

सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपादाचार्य ने कहा है-शरीरादीनां स्वाभावनुचिन्तन अनुप्रेक्षा अर्थात् शरीरादिक के स्वभाव का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है । संवेग-वैराग्य को उत्पन्न करने वाली एवं जीवन के रहस्यों को उद्घाटित करने वाली ये बारह अनुपेक्षाऐं वैरागी के लिए जननी तुल्य है *भविय-जणाणंद-जणणीओ* (का. अनु.) शुभचंदाचार्य ने *ज्ञानार्णव ग्रंथ* में कहा भी है -

विध्याति कषायाग्निर्विगलतिरागो विलीयते ध्वान्तम् ।
उन्मिषति बोधदीपो हृदिपुंसां भावनाभ्यसात् ॥

इन द्वादश भावनाओं के निरन्तर अभ्यास करने से मनुष्यों के हृदय में कषाय रूप अग्नि बुझ जाती है, तथा परद्रव्यों के प्रति रागभाव गल जाता है । और अज्ञानरुपी अंधकार

का विलय होकर ज्ञानरूपी दीप का प्रकाश होता है। कहा भी है।

द्वादशापि सदा चिन्त्या अनुपेक्षाा महात्मभिः।
तद्भावना भवत्येव कर्मणः क्षयकारणम् ॥

महात्मा पुरुषों को निरन्तर बारह अनुपेक्षाओं का चिन्तन करना चाहिए क्योंकिये कर्म क्षय में कारण है।

अतः हे मानव इन अनुपेक्षाओं के चिन्तन से चैतन्य को उपलब्ध कर। चैतन्यामृत की परमोपलब्धि ही अनुपेक्षा का परम-सार है। इनको जीवन में श्रृंगारित करना ही आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द देव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन है। एवं आध्यात्म योगी, संतशिरोमणि प.पू. आचार्य गुरुवर्य श्री विरागसागर जी महाराज जिन्होंने मूल गाथाओं का सहज सुबोध शैली में अनुवाद कर प्रणेता की आध्यात्म लेखनी को जनमानस में आलोकित करने का मार्ग प्रशस्त किया एवं अहर्निश संलग्न है ऐसे धरा के गौरव पुंज, मेरे जीवन प्रदाता, रत्नत्रय दाता महायोगी के श्री चारणविंद में त्रय भक्ति पूर्वक नमन-।

मुनि विशल्य सागर
वर्णी भवन मोराजी सागर (म.प्र.)
पावस योग - 2000
वीर निर्वाण सं. 2526

जरा सोच

प्रस्तुति -
मुनि विशल्य सागर जी

चाहता हूँ
पुष्प यह , गुलदान का मेरे, न मुरझाये । न कुमलाये कभी
देता रहे, सौरभ सदा
अक्षुण्ण इसका, रूप हो ।
पर यह कहां संभव, कि जो है आज
वह कल को कहाँ ?, उत्पत्ति यदि
अवसान निश्चित ।, आदि है,
तो अंत भी है ।, अर्क का उदय
तो अस्त भी है ।, जरा सोच ।
उगते / ढलते सूरज की लाली
खिलते / मुरझाते जलज की कहानी कह रहे है ।
ये सभी रूप/लावण्य
जीवन/यौवन, मान/सम्मान
मकान/दुकान, शासन/आसन
राशन/वासन, यान/वाहन
तन/धन, स्वजन/परिजन
सत्ता/छत्ता, चित्त/वित्त
भोग/उपभोग, संयोग/नियोग
है इनका, नियामक वियोग
काल का प्रवाह में
बह रहा है
और बहता बहता
कह रहा है ।
यह जीवन
पल-पल इसी प्रवाह में
बह रहा, बहता जा रहा है ।
और चलता हुआ
कहता जा रहा है
यहाँ पर कोई भी
चिर....ध्रुव - थिर.....।
न रहा न रहेगा ।
जरा सोच

जरा संभल

प्रस्तुति -
मुनि विशुद्ध सागर जी

हुआ प्रभात, जब आयी लालिमा
पूर्व दिशा में खिले कमल
सरोवर में, विहग-विहंगम
रव कर रहे नग-नग में
ढली लालिमा हुआ मध्यान्ह
तड़ग तपन पड़ी
झुलसे तभी पथ पथ में
बीते क्षण कुछ पल
मुर्झा गया दिनकर
हुई शाम, गया सूर्य अस्ता चल
हो गये पक्षी मौन साधना रत
ये है तेरी
हालत उदित होना अस्ताचल
को चले जाना यह प्रकृति का धर्म है
इसे न ही कोई टाल सका
तु क्या टाल पायेगा
संभल अपने में
तू नहीं तो मौत तेरे खड़ी बगल में

समर्पण

परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर आचार्य श्री 108 विमल सागर जी महाराज के शिष्योत्तम/श्रमणोत्तम

सर्वाधिक-दीक्षा प्रदाता

महाप्रज्ञ-अज्ञान तिमिर मार्तण्ड

वात्सल्य पुंज-समता कुंज

सौम्य मूरत-मोक्षमार्ग के वीतरागी पाथिक

संयम साधक व प्रेरक

श्रमण/आर्ष संस्कृति रक्षक

बाल अनगार/आखण्ड बाल ब्रम्हचारी आगम सूत्र चर्चविद्

वाणी अनुरूप चर्या के प्रबल पालक

यथा नाम तथा गुणधारी

अनुशासक / श्रमण संस्कृति के देदीप्यमान

नक्षत्र/करुणामूर्ति गुरुदेव परम पूज्य

आचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज के नवम

आचार्य पदारोहेण दिवस के मंगल अवसर पर आपके श्री कर-कमलों में ग्रंथराज सादर समर्पित

• मुनि विशल्य सागर

श्री वीतरागाय नमः

-बारसाणु पेक्खा-

सिरि कोंड कुदाचरियो परुवदा

मंगलाचरण/ग्रंथ प्रतिज्ञा

णमिऊण सव्व सिद्धे झाणुत्तम-खविद-दीह संसारे।
दस दस दो दो य जिणे दस-दो अणुपेहणं वोच्छे ॥१॥

अन्वयार्थ :

उत्तम झाण	-	उत्तम ध्यान (धर्म, शुक्ल) से जिन्होने
दीह संसारे खविद	-	दीर्घ संसार को नष्ट कर दिया है ऐसे
सव्व सिद्धे य	-	सम्पूर्ण सिद्धों को और
दस दस दो दो जिणे	-	चौबीस जिनेन्दों (तीर्थकरों) को
णमिऊण	-	नमस्कार करके
दस दो अणुपेहणं	-	बारह अनुपेक्षाओं को
वोच्छे	-	(मैं कुंदकुंदाचार्य) कहूँगा ॥१॥

भावार्थ - उत्तम धर्म, ध्यान और शुक्ल ध्यान से जिन्होंने दीर्घ संसार को नष्ट कर दिया है ऐसे अतीत, अनागत और वर्तमान के सभी सिद्धों को तथा चौबीस तीर्थंकारों को नमस्कार करके मैं (कुंद कुंदाचार्य) बारह अनुपेक्षाओं को कहूँगा।

१. यह गाथा मूलाचार में निम्न प्रकार से है।

सिद्धे णमंसिदूण य झाणुत्तम खविय दीह संसारे।
दह दह दो दो य जिणे दह दो अनुणवेहणा वुच्छं ॥६९३॥

अनुप्रेक्षाओं के नाम

अद्धुव मसरण-मेगत्त-मण्ण-संसार-लोग-मसुचित्तं।
आसव-संवर-णिजर धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो ॥२॥

अन्वयार्थ:-

अद्धुवं, असरणं एगत्त	-	अनित्य (अध्रुव), अशरण, एकत्व
अण्ण संसार लोगं असुचित्तं	-	अन्यत्व संसार, लोक, अशुचित्व
आसव संवर णिज्जर	-	आस्रव, संवर, निर्जरा
धम्मं च बोहिं	-	धर्म और बोधि इनका
चिंतेज्जो	-	चिंतन करो ॥२॥

भावार्थ- ध्यान और स्वतत्त्व के चिंतन में कारण भूत-

(१) अध्रुव (अनित्य) (२) अशरण (३) एकत्व (४) अन्यत्व (५) संसार (६) लोक (७) अशुचित्व (८) आस्रव (९) संवर (१०) निर्जरा (११) धर्म (१२) बोधि-दुर्लभ

ये बारह अनुप्रेक्षायें हैं।

पूज्य आचार्य श्री उमा स्वामी ने इन बारह अनुप्रेक्षाओं का क्रम तत्त्वार्थ सूत्र में निम्न प्रकार से दिया है।

अनित्याशरण संसारैकत्वा न्यत्वाशुच्यास्रव संवर निर्जरालोक बोधि दुर्लभ धर्म स्वाख्या तत्त्वानुचिन्तन मनुप्रेक्षा: **तत्वार्थ सूत्र ९/७**

अर्थात्: (१) अनित्य (२) अशरण (३) संसार (४) एकत्व (५) अन्यत्व (६) अशुचि (७) आस्त्रव (८) संवर (९) निर्जरा (१०) लोक (११) बोधि दुर्लभ (१२) धर्म

ये स्वतत्त्व है इनका बार बार चिंतन करना अनुप्रेक्षा है।

विरागमृत

अनुप्रेक्षाओं के चिंतन से समता रूपी सुख उत्पन्न होता है समता आत्मा का स्वभाव है एवं वही आत्मीय स्तूप है

(ऐसे चलो मिलेगी राह कृति से)

१. अध्रुव अनुप्रेक्षा

ये शाशवत नहीं

वर भवण-याण-वाहण-सयणासण-देव-मणुव-रायाणं ।
मादु-पिदु-सजण-भिच्च संबंधीणो य पिदि वियाणिच्चा ।।३।।

मूला चार में यह गाथा निम्न प्रकार से है-

ठाणाणि आसणाणि य देवासुर इड्ढि मणुय सोक्खाइं ।
मादु पिदु सयणसंवासदा य पीदी विय अणिच्चा ।।६९५।।

अन्वयार्थ:-

वर भवण	-	श्रेष्ठ (ऊंचे) भवन
याण	-	यान
वाहण	-	वाहन
शयन	-	सोने की शैय्या
आसन	-	बैठने का सिंहासन आदि
देव मणुव रायाणं	-	देव, मनुष्य, राजा
मादु-पिदु सजण	-	माता, पिता स्वजन
भिच्च व संबंधीणो	-	नौकर तथा पुरजन
पिदि	-	इत्यादि की प्रीति को
आणिच्चा वियाण	-	(हे जीव तूँ) अनित्य जान ।।३।।

भावार्थ- हे जीव तु ऊं चे-ऊं चे भवन, अटारी, महल तथा मोटर कार, रथ, साइकिल, स्कूटर, हेलीकॉप्टर, वायुयान आदि यान/ तथा हाथी, ऊं ट, घोड़ा, बैल, रेलगाड़ी आदि वाहन। प्लाट पलंग शैया, कुर्सी, बेंच, चौकी, सिंहासन आदि आसन। और देव मनुष्य राजा, माता, पिता और स्वजन नौकर तथा पुरवासी इन्हें अनित्य जानो।

इंद्रधनुषसम

सामग्गिं दियरूवं आरोग्गं जोव्वणं बलं तेजं ।
सोहग्गं लावण्णं सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ॥४॥

यहगाथा मूलाचार में इस प्रकार है
सामग्गिं रूवं मदि जोवण जीवियं बलं तेजं ।
गिह सयणासण भंडादिया अणिच्चेति चिंतेज्जो ॥६९६॥

अन्वयार्थ:-

सामग्गिं	-	बाह्य (परिग्रह रूप) सामग्री
इंदिय रूवं आरोग्गं	-	इंद्रियां, रूप, आरोग्य
जोव्वणं बलं तेजं	-	यौवन, बल तेज
सोहग्गं	-	सौभाग्य और लावण्य
सुरधणुं इव	-	इंद्र धनुष की तरह
सस्सयं ण हवे	-	शाश्वत नहीं है। अर्थात नष्ट होने वाले हैं। ॥४॥

भावार्थ- चेतन अचेतन रूप समस्त बाह्य एवं रागद्वेष मोहरूप आभ्यंतर सामग्री (परिग्रह) सुंदर रूप, निरोगिता, यौवन अवस्था, शारीरिक या अन्य सैन्यादि बल शरीर का तेज (कांति) सौभाग्य, और लावण्यता विनाशीक है शाश्वत नहीं है।

जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं ।
सा किं बंधेइ रइं इयर-जणाणं अपुण्णाणं ॥
(का. अनु. १०)

अहमिंदादि पद थिर नहीं

जल बुब्बुद- सक्कधणु- खण- रुचि घण सोहमिव थिरं ण हवे।
अहमिंद ट्ठाणाइं बलदेव प्पहुदि पज्जाया ।।५।।

अन्वयार्थ:-

अहमिंद ट्ठाणाइं	-	अहमिंद्रों के स्थान/पद
बलदेव प्पहुदि पज्जाया	-	बलदेव आदि पार्यायें
जल बुब्बुद	-	जल बुद् बुद्
सक्कधणु	-	इंद्र धनुष
खण	-	बिजली और
धण सोहं इव	-	बादल की शोभा की तरह।
सस्सयं ण हवे	-	शाश्वत नहीं है। ।।५।।

भावार्थ- जल के बुदबुद (जल के गुब्बारे) इंद्रधनुष, बिजली, बादल की शोभा (सुंदर आकृति) की तरह, अहमिंद्रों के पद एवं बलदेव आदि की पर्याय भी नाशवान है तो फिर संसार में कौन सा ऐसा पद या पर्याय है जो शाश्वत ध्रुव रह सकती हो? अर्थात् कोई नहीं। ऐसा चिंतन करो। ऐसा करने से तज्जन्य राग द्वेष, मोह छूटता है।

चइऊण महामोहं विसए मुणिऊण भंगुरे सव्वे।
णिव्विसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तम लहह ।।
(का. अ. २२)

अर्थ- हे भव्य जीवो। समस्त विषयो को क्षण भंगुर जानकर महामोह को त्यागो और मन को विषयों से रहित करो, जिससे उत्तम सुख प्राप्त हो।

आत्म देह का संबंध क्षीरनीरवत

जीवणिबद्धं देहं खीरोदय मिव विणस्सदे सिग्घं।
भोगोपभोग कारणदव्वं णिच्चं कहं होदि ।।६।।

अन्वयार्थ:-

जीव णिबद्धं देहं	-	(जब) जीव से संबद्ध शरीर
खीरोदय इव	-	क्षीर नीर की तरह एक जैस दिखने पर भी
सिग्घं विणस्सदे	-	शीघ्र विनष्ट हो जाता है
भोग उपभोग कारणं दव्वं	-	(फिर) भोगोपभोग के कारण भूत द्रव्य/पर्याय/वस्तुयें
णिच्चं कहं होदि	-	नित्य कैसे हो सकती हैं?

भावार्थ- क्षीर नीर की तरह, एक मेक रहने वाला जीव से अनबद्ध यह शरीर भी जब शीघ्र ही नष्ट हो जाता है तो फिर भोगोपभोप की सामग्रियां कैसे शाश्वत रह सकती हैं। फिर उनमें आसक्ति क्यों? अर्थात् आसक्ति नही होंना चाहिए।

विराग - निधि

मौत का कोई भरोसा नहीं, कब तुम्हे ग्रास बनाले। चाहे राजा हो या रंक,
अमीर हो या गरीब, बृद्ध हो या बालक मौत किसी को नहीं छोड़ती।
मौत बचपन और पचपन को नहीं देखती। अतः जीवन में मौत
रूपी यमराज तुम्हें ग्रसने आए, उसके पूर्व ही अपने जीवन को
धर्म से सुसज्जित करलो।

(ऐसे चलो मिलेगी राह कृति से)

शाश्वत आत्मा चिन्तनीय

परमट्ठेण दु आदा देवासुर मणुव राय विभवेहिं ।
वदि रित्तो सो अप्पा सस्सदमिदि चिंतए णिच्चं ।।७।।

अन्वयार्थ:-

परमट्ठेण दु आदा	-	परमार्थ (निश्चय नय) से जो आत्मा
देवासुर मणुव राय	-	देवेन्द्र, असुरेन्द्र, मनुष्येन्द्र, की
विभवेहिं	-	विभूति से
वदिरित्तो	-	रहित है
सो अप्पा	-	वही आत्मा
सस्सदं इदि	-	शाश्वत है ऐसा
णिच्चं चिंतए	-	नित्य ही चिंतन करना चाहिए ।।७।।

भावार्थ- परमार्थ यानि निश्चय नय से जो आत्मा देवेन्द्र आर्थात् सौधर्मेन्द्र, असुरेन्द्र अर्थात् धरणेन्द्र और मनुष्येन्द्र अर्थात् चक्रवर्ती की विभूति धन दौलत, निधि, रत्न खजाने सेना आदि से रहित हैं, ऐसी वही आत्मा हमारी है और शाश्वत रहने वाली है ऐसा चिंतन करना चाहिए।

एगो में सस्सदो अप्पा णाण दंसण लक्खणो ।
सेसा में बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा ।।
(मूलाचार)

अर्थ - वास्तव में ज्ञान, दर्शन स्वभावी एक आत्मा ही शाश्वत है शेष अन्य पदार्थ नहीं वे तो संयोगी अवस्थायें है।

२. अशरण- अनुप्रेक्षा

ये सभी मृत्यु से नहीं बचा सकते

मणि-मंतो-सह-रक्खा हय गय रह ओ य सयल विज्जाओ।
जीवाणं णहि सरणं तिसु लोए मरणसमयम्हि ॥८॥

यह गाथा मूलाचार इस प्रकार है-
हय गय रहणर बल वाहणाणि मंतोसधाणि विज्जाओ।
मच्चुभयस्स ण सरणं णिगडी णीदीय णीया य ॥६९७॥

अन्वयार्थ:-

तिसु लोए जीवाणं	-	तीनों लोक में जीवों को
मरण समयम्हि	-	मृत्यु/मरण के समय
मणि मंतओ सह रक्खा	-	मणि, मंत्र, औषधि
हय गय रहओ य	-	घोड़ा, हाथी, रथ, और
सयल विज्जाओ	-	सम्पूर्ण विद्यायें (भी)
सरणं णहि	-	शरण नहीं है ॥८॥

भावार्थ- ऊर्ध्व, मध्य तथा अधो इन तीनों लोकों में जीव को मृत्यु से न तो कोई मणि बचा सकता है, न मंत्र न औषधियाँ, यहां तक ही नहीं किंतु शक्तिशाली हाथी, वेग से दौड़ने वाला घोड़ा , सुदृढ़ (मजबूत) रथ एवं विश्व की सम्पूर्ण विद्यायें भी नहीं बचा सकती है अर्थात् ये कोई भी हमारे लिये शरण भूत नहीं है।

पर हाँ! यदि आत्मा की भव भ्रमण से रक्षा करने वाली कोई शरण है तो वह है- चत्तारिशरणं, अरहंत, सिद्ध, साधू, और केवली प्रणीत धर्म है अथवा- "शुद्धातम अरु पंच गुरु जग में शरणा दोय" हमारा आत्मा तथा अरहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी ही हमें शरण भूत है और कोई हमारे लिये शरण नहीं है। ऐसा चिंतन करने से दीन हीनता समाप्त होती है और आत्म कल्याण रूप लक्ष्य में एकाग्रता बढ़ती है।

मृत्यु काल से इन्द्र भी नहीं बचा

सग्गो हवे हि दुग्गं भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं।
अइरावणो गइंदो इंदस्स ण विज्जदे सरणं ॥१॥

अन्वयार्थ:-

सग्गो हवे हि दुग्गं	-	स्वर्ग ही जिसका दुर्ग है
ये देवा भिच्चा	-	और देवतागण नौकर हैं
पहरणं वज्जं	-	प्रहार या रक्षक वज्र हैं
अइरावणो गइंदो	-	ऐरावत (जिसका) हाथी है
इंदस्स	-	ऐसे इंद्र को (भी कोई)
सरणं ण विज्जदे	-	शरण नहीं है ॥१॥

भावार्थ- स्वर्ग ही जिसका दुर्ग/किला है, देवताओं का समूह जिनका नौकर/सेवक है। शत्रुओं पर प्रहार कर अपनी रक्षा करने वाला अस्त्र ही जिसका वज्र (शक्ति) है। तथा ऐरावत जिसका हाथी है। ऐसे सौधर्मेन्द्र को भी कोई शरण नहीं है अर्थात मृत्यु से नहीं बच सका तो फिर संसार में अब ऐसा कौन सी वस्तु हैं जो मृत्यु से बचा सकेगी। अथवा ऐसा कौनसा व्यक्ति है जो मृत्यु से बच सकेगा? अर्थात-चरम शरीरी जीवों को छोड़कर कोई नहीं है।

• यह काल का जाल अथवा फन्दा ऐसा है कि क्षण मात्र मे जीवों को फँास लेता है और सुरेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र तथा नागेन्द्र भी इसका निवारण नहीं कर सकते हैं।
(ज्ञा. आ.)

काल-कवलित चक्री भी

णवणिहि चउदहरयणं हयमत्त गइंदचाउरंग बलं।
चक्केसस्स ण सरणं पेच्छंतो कद्दये कालो ॥१०॥

अन्वयार्थ:-

णव णिहि	-	नवनिधि
चउदहरयणं	-	चौदह रत्न
हयमत्त गइंद	-	घोड़ा,'मत्त गजेन्द्र/हाथी
चउरंग बलं	-	चतुरंग सेना (से युक्त)
चक्केसस्स	-	चक्रवर्ती को भी
सरणं ण	-	(यह सब) शरण नहीं है (उसे भी)
पेच्छंतो	-	देखते हुये
कालोकद्दये	-	काल कर्दन कर देता है। ॥१०॥

भावार्थ- चक्र, छत्र, खड्ग (तलवार), दण्ड, काकिणी, मणि, चर्म, सेनापति, गृहपति, गज, अश्व (घोड़ा), पुरोहित, स्थपित (कारीगर) और पटरानी ये चौदह रत्न। तथा काल, महाकाल, पाण्डु माणव, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगल, और नाना रत्न रूप ये नव निधियां। घोड़ा मदोन्मत्त शक्तिशाली हाथी तथा हाथी, घोड़ा, रथ और पदाति रूप चतुरंग सेना से युक्त चक्रवर्ती को भी ये सब शरण नहीं है। इन सब के होते हुये भी जब उसे भी मृत्यु नही छोड़ी तो फिर अन्य किसको छोड़ सकेगी। अर्थात् किसी को भी नहीं। तो फिर क्यों न हम उसके (मृत्यु के) आने के पूर्व अपना हित करलें।

वास्तविक शरण आत्मा

जाइ जरा-मरण रुजा भयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा।
तम्हा आदा सरणं बंधोदयसत्त कम्मवदि रित्तो ॥११॥

अन्वयार्थ:-

जाइ जरा मरण रुजा भय दो	-	(इस जीव को) जन्म बुढ़ापा मरण रोग भय से
अप्पणो अप्पा रक्खेदि	-	आत्मा की आत्मा ही रक्षा करता है
तम्हा	-	इसलिये
बंध उदय सत्त कम्म वदिरित्तो	-	बंध उदय सत्व रूप कर्म से रहित
आदा सरणं	-	आत्मा शरण है। ॥११॥

भावार्थ- जन्म (उत्पत्ति), जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु (मरण) रूपी रोगों के भय से अपनी आत्मा की अपनी आत्मा ही रक्षा करती है। अन्य दूसरा कोई रक्षा नहीं करता है। इसलिये निश्चय से बंध उदय और सत्व रूप कर्मो से रहित हमारी आत्मा ही हमारे लिए शरण भूत हैं।

• यथा बालं तथा वृद्धं यथाढ्यं दुर्विधं तथा।
यथा शूरं तथा भीरुं साम्येन ग्रसतेऽन्तकः॥
(ज्ञा. आर्णव.)

अर्थ- यह काल जैसे बालक को ग्रसता है, वैसे ही वृद्ध को भी ग्रसता है और जैसे धनाढ्य को ग्रासता है, उसी प्रकार दरिद्र को भी। तथा जैसे शूरवीर को ग्रसता है उसी प्रकार कायर को भी। जगत के सभी जीवों को समान भाव से ग्रसता है किसी मैं भी इसका हीन अधिक विचार नहीं है इसी कारण इसका नाम समवर्ती भी है।

ऐसी आत्मा ही शरण है

अरुहा सिद्धाइरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
ते वि हु चिट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।१२।।

अन्वयार्थ:-

अरुहा सिद्ध आइरिया	-	अरहंत, सिद्ध, आचार्य
उवज्झाया साहु	-	उपाध्याय और साधु
पंचपरमेष्ठी	-	ये पंचपरमेष्ठी है
ते वि हु	-	वे भी निश्चय से
आदे चिट्ठदि	-	आत्मा में रहते हैं
तम्हा हु	-	इसलिये निश्चय से
मे आदा सरणं	-	*मुझे अपनी आत्मा ही शरण है। ।।१२।।*

भावार्थ- आत्मा ही अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांचों परमेष्ठी की क्रमिक चेष्टा करता है। इसलिये निश्चय नय से वह अपनी मेरी आत्मा ही मुझे शरण है और कोई शरण नहीं है।

- शोच्यन्ते स्वजनं मूर्खाः स्वकर्मफल भोगिनम्।
नात्मानं बुद्धिविध्वंसा यमदंष्ट्रान्त रस्थितम्।।
(ज्ञा. आ.)

अर्थ- यदि अपना कोई कुटुंबी जन अपने कर्मवशात मरण को प्राप्त हो जाता है तो नष्ट बुद्धि मूर्खजन उसका शोच करते है परन्तु स्वयं यमराज की दाढ़ों में आया हुआ है, इसकी चिंता कुछ भी नहीं करता है यह बड़ी मूर्खता है

आराधना रूप आत्मा ही शरण है

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं च सत्तवो चेव ।
चउरो चिट्ठदि आदे तम्हा आदाहु मे सरणं ॥१३॥

अन्वयार्थ:-

सम्मत्तं सण्णाणं च सच्चारित्तं	- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र
च एव सत् तवो	- तथा इसी प्रकार सम्यक् तप
चउरो आदे चिट्ठदि	- ये चारों आत्मा में ही रहते हैं
तम्हा हु	- इसलिए निश्चय से
मे आदा सरणं	- मुझे आत्मा ही शरण है ॥१३॥

भावार्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप ये चारों आराधनायें आत्मा में ही रहती है अर्थात् आत्मा ही चारों आराधना रुप चेष्टा करता है इसलिये निश्चय से मुझे वह अपनी आत्मा ही शरण है।

• यस्मिन्संसार कान्तारे यमभोगीन्द्र सेविते।
पुराणपुरुषाः पूर्वमनन्ताः प्रलयं गताः ॥
(ज्ञा. आ.)

अर्थ- काल रूप सर्प से सेवित संसार रूपी वन में पूर्व काल में अनेक पुराणपुरूष (शलाकापुरूष) प्रलय को प्राप्त हो गये, उनका विचार कर शोक करना वृथा है।

३. एकत्व- अनुप्रेक्षा

स्वयं कर्ता - भोक्ता

एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीह संसारे ।
एक्को जायदि मरदिय तस्स फलं भुजंदे एक्को ॥१४॥

मूलाचार में यह गाथा इस प्रकार है-
एक्को करेइ कम्मं एक्को हिंडदिय दीह संसारे ।
एक्को जायदि मरदिय एवं चिंतेहि एयत्तं ॥७०१॥.

अन्वयार्थ:-

एक्को करेदि कम्मं	-	यह जीव एक अकेला ही कर्मों को करता है
य एक्को दीह संसारे	-	और अकेला दीर्घ संसार में
हिंडदी	-	घूमता है
एक्को जायदि मरदिय	-	अकेला जन्म लेता है और अकेला मरता है
एक्को तस्स फलं भुंजदे	-	और अकेला ही उसके फलों को भोगता ॥१४॥

भावार्थ- यह संसारी जीव स्वयं अकेला ही नाना प्रकार के शुभाशुभ कर्मों को करता है। और अकेला ही उनके फलों को भोगता है। तथा अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरण करता है। तथा अकेला ही दीर्घ संसार में घूमता है।

• दाणु ण दिण्णउ मुणिवर हँ ण वि पुज्जिउ जिण-णाहु।
पंच ण वंदिउ परम-गुरू किमु होसउ सिव लाहु ॥
(प. प्र.२/१६८)

अकेला ही पाप करता और फल भोगता

एक्को करेदि पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण ।
णिरय तिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ।।१४।।

अन्वयार्थ:-

जीवो	- यह जीव
तिव्वलोहेण	- तीव्र लोभ से युक्त होकर
विसय णिमित्तेण	- विषयों के निमित्त से
एक्को करेदि पावं	- अकेला पाप करता है
तस्स फलं	- उसके फलों को
णिरय तिरियेसु	- नरक और तिर्यंच गति में
एक्को भुंजेदि	- अकेला ही भोगता हैं । ।।१५।।

भावार्थ- यह संसारी जीव तीव्र लोभ से युक्त होकर के, पंचेन्द्रियों के विषयों के निमित्त अकेला ही पाप करता है और उसके फलों को नरक व तिर्यंच गति में जाकर अकेला ही भोगता है। तात्पर्य यह है कि अपने द्वारा किये पापों से नरक व तिर्यंच गति में जाता है। और वहां पाप के फलों को अकेला ही भोगता है।

• एकत्वं किं न पशयन्ति, जड़ा जन्मग्रहर्दिता: ।
यज्जन्म मृत्युसम्पाते, प्रत्यक्षमनुभूयते ।।ज्ञानार्णव।।

अर्थ-आचार्य महाराज कहते है कि, ये मूर्ख प्राणी संसाररूपी पिशाच से पीड़ित हुए भी अपने एकता को क्यों नही देखते जिसे जनममरण प्राप्त होने पर सब ही जीव प्रत्यक्ष में अनुभवन करते है

अकेला ही पुण्य करता है और फल भोगता

एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण।
मणुवदेवेसु जीवो तस्सफलं भुंजदे एक्को ॥१६॥

अन्वयार्थ:-

जीवो	-	यह जीव
धम्मणिमित्तेण	-	धर्म के निमित्त
पत्त दाणेण	-	सत् पात्रों को दान देने से
पुण्णं एक्को करेदि	-	पुण्य को अकेला प्राप्त करता है
तस्स फलं	-	और उसके फलों को
मणुव देवेसु	-	मनुष्य व देवों में
एक्को भुंजेदि	-	अकेला ही भोगता है। ॥१६॥

भावार्थ- यह जीव धर्म के निमित्त सतपात्रों को दान देने से पुण्य को भी अकेला ही करता है और उसके फलों को वर्तमान भव की अपेक्षा कर्म भूमि मनुष्यों में और भावि भव की अपेक्षा भोग भूमियां मनुष्यों में व देव पर्यायों में अकेला ही भोगता है।

• महाव्यसनासंकीर्णे दु:खज्वलनदीपिते।
एकाक्येव भ्रमत्यात्मा दुर्गे भवमरुस्थले॥
(ज्ञा.आ.)

अर्थ- महा आपदाओं से भरे हुए दु:ख रूपी अग्नि से प्रज्वलित और गहन ऐसे संसार रूपी मरुस्थल में यह जीव अकेला ही भ्रमण करता है कोई भी इस का साथी नहीं है।

पात्र-अपात्र का वर्णन

उत्तमपत्तं भणियं सम्मत्तगुणेण संजुदो साहू ।
सम्मादिद्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेओ ।।१७।।

णिद्दिट्ठो जिणसमये अविरद सम्मो जहण्ण पत्तोत्ति ।
सम्मत्त रयण रहिओ णपत्त मिदि संपरिक्खेज्जो ।।१८।।

अन्वयार्थ:-

जिण समये	-	जिनागम में
सम्मत्त गुणेण संजदो साहू	-	सम्यक्त्व गुणसे युक्त सकल संयमी मुनिजनों को
उत्तम पत्तं भणियं	-	उत्तम पात्र कहा है।
हु	-	और
सम्मादिद्ठी सावय	-	सम्यग्दर्शन से युक्त देश व्रती श्रावक को
मज्झिमपत्तो	-	मध्यम पात्र कहा है।
अविरद सम्मो	-	अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों को।
जहण्ण पत्तोत्ति विण्णेओ	-	जघन्य पात्र कहा है। ऐसा जानो
सम्मत्त रायण रहिओ	-	किंतु सम्यक्त्व रत्न से रहित
पत्तं ण	-	पात्र नहीं हो सकता है।
इदि संपरिक्खेज्जो	-	इस प्रकार पात्र की अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिए। ।।१७.१८।।

भावार्थ- आगम ग्रंथों में सम्यक्त्व गुण से युक्त सकल संयमी मुनिजनों को उत्तम पात्र कहा है। और सम्यग्दर्शन से युक्त व्रती श्रावक को मध्यम पात्र कहा है तथा अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों को जघन्य पात्र कहा है किंतु सम्यक्त्व रत्न से रहित पात्र नहीं हो सकता है। इस प्रकार पात्र की अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिए।

सिद्धि किसे नहीं

दंसण भट्टा भट्टा, दंसण भट्टस्य णत्थिणिव्वाणं ।
सिज्झंति चरियभट्टा, दंसण भट्टा ण सिज्झंति ॥१९॥

अन्वयार्थ:-

दंसण भट्टा भट्टा	-	दर्शन से भ्रष्ट, भ्रष्ट हैं, क्योंकि
दंसण भट्टस्स	-	दर्शन से भ्रष्ट/रहित जीव को
णिव्वाणं णत्थि	-	निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती है।
चरिय भट्टा	-	चारित्र से भ्रष्ट
सिज्झंति	-	(फिर भी) सिद्धि/मुक्ति को प्राप्त कर सकता है किन्तु
दंसण भट्टा	-	दर्शन से भ्रष्ट को
सिज्झंति ण	-	सिद्धि/मुक्ति/निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥१९॥

भावार्थ- दर्शन से भ्रष्ट (पतित) वास्तव में भ्रष्ट ही है। क्योंकि दर्शन से रहित जीव को निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति नहीं होती, चारित्र भ्रष्ट एक दृष्टि से मुक्ति पा सकता है किन्तु दर्शन से भ्रष्ट जीव कभी भी मुक्ति को नही पा सकता हैं।

• विसया मिसेहि पुण्णो अणंत सोक्खाण हे दुसम्मत्तं।
सच्चारित्त जहदि हु हणं व वज्जं च मज्जादणं ॥

अर्थ- विषय भोगों से परिपूर्ण पुरुष अनन्त सुख के कारण भूत सम्यकत्व, सम्यक्चारित्र तथा लज्जा और मर्यादा को तृण समझ छोड़ देता है।

शुद्धात्म स्वरूप उपादेय

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो णाणदंसण लक्खणो ।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चिंतेह संजदो ॥२०॥

अन्वयार्थ:-

अहं एक्को णिम्ममो	-	मैं एक हूँ, ममता से रहित हूँ।
सुद्धो णाणदंसण लक्खणो	-	(शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से) शुद्ध हूँ, ज्ञान दर्शन लक्षण वाला हूँ। अत: मुझे
सुद्धं एयत्तं उपादेयं	-	शुद्ध और एकत्व (स्वभाव) उपादेय/ ग्रहण करने योग्य है।
एवं संजदो चिंतेह	-	इस प्रकार साधुओं को चिंतन करना चाहिए ॥२०॥

भावार्थ- मैं शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से एक हूँ, ममता से रहित हूँ शुद्ध हूँ, ज्ञान और दर्शन ही मेरा लक्षण है। अत: मुझे मेरा शुद्ध और एकत्व स्वभाव उपादेय है। इस प्रकार से साधुओं को निरंतर चिंतन करना चाहिए।

• एकोहं निर्मम: शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्र गोचर:।
बाह्या: संयोगजा भावा, मत्त: सर्वेऽपि सर्वथा ॥

अर्थ- मैं एक ममतारहित शुद्ध ज्ञानी और योगियों के द्वारा जानने योग्य हूँ। इसके अलावा संयोगजन्य, जितने भी देहादिक पदार्थ है वे सब मुझसे सर्वथा भिन्न है।

४. अन्यत्व अनुप्रेक्षा

सांसरिक संबंध स्वार्थमूलक

माता पिदर सहोदर पुत्तकलत्तादि बंधु संदोहो ।
जीवस्स ण संबंधो णियकज्ज वसेण वट्टंति ॥२१॥

मूलाचार में यह गाथा इस प्रकार है-
मादु पिदु सयण संबंधिणो ये सव्वे वि अत्तणो अण्णे ।
इह लोग बंधवा ते ण य पर लोगं समं णेंति ॥७०२॥

अन्वयार्थ:-

मादा पिदर सहोदर	-	माता, पिता, भाई बहिन
संदोहो	-	शरीर से संबंध रखने वाले
पुत्त कलत्त बंधु	-	पुत्र स्त्री तथा मित्रादि
णिय कज्ज वसेण	-	अपने निज कार्य (स्वार्थवश ही)
वट्टंति	-	प्रवृत्ति करते हैं (वास्तव में इन सबसे)
जीवस्स संबंधो ण	-	जीव का कोई भी संबंध नही है। ॥२१॥

भावार्थ- माता-पिता, भाई, बहिन, शरीर से संबंधी पुत्र स्त्री और मित्र आदि अपने निजी कार्य (स्वार्थ) वश ही प्रवृत्ति करते हैं वास्तव में इन सबसे जीव का कोई संबंध नहीं है।

विरागामृत

- संसार स्वप्न में मत खोजाना, नहीं तो इसी संसार में घूमोगे।

(दूर नहीं है मंजिल कृति से)

मोह की माया

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाहगोत्ति मण्णंतो।
अप्पाणं णहु सोयदि संसार महण्णवे बुड्डं ।।२२।।

अन्वयार्थ:-

मण्णंतो	- प्राय: संसारी प्राणी ऐसा मानते हैं कि
मम णाहगो त्ति	- जो मेरा नाथ था वह
मदोत्ति	- मर गया इत्यादि प्रकार से
अण्णोअण्णं	- एक दुसरे के विषय में
सोयदि	- सोचता हैं (शोक करता हैं किंतु)
संसार महण्णवे बुड्डं	- संसार समुद्र में डूबती हुई
अप्पाणं णहु सोयदि	- (अपनी) आत्मा के विषय मे नहीं सोचता है। ।।२२।।

भावार्थ- प्राय: प्राणी यह सोचता है कि जो मेरा नाथ/ स्वामी/ पालक/संरक्षक था। वह मर गया। इत्यादि प्रकार से परस्पर एक दूसरों के विषय में सोचता हैं शोक करता है परंतु संसार रूपी महार्णव/ समुद्र में डूबती अपनी आत्मा के विषय में कुछ भी नहीं सोचता।

• अंधो णिवडइ कूवे बहिरो ण सुणेदि साधु उवदेस।
पेच्छं तो णिसुणंतो णिरए जपज्इ तं चोज्जं।।
।।तिलोयपण्णती ६२२।।

अर्थ- यदि अन्धा कुएँ में गिरता है और बहरा सदुपदेश नहीं सुनता तो कोई आश्चर्य नहीं किन्तु जो देखता एवं सुनता हुआ नरक में पड़ता है। तो आश्चर्य है।

शरीरादि भी अन्य है

अण्णं इमं सरीरादिगं पि होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादा एवं चिंतेहि अण्णत्तं ॥२३॥

मूलाचार में यह गाथा ७०४ नं. पर है वहां पर दंसणमादा के स्थान पद दंसणमादात्ति आया है।

अन्वयार्थ:-

णाणं दसण आदा	- ज्ञान दर्शन ही आत्मा हैं शेष
इमं सरीरादिगं बाहिरं	- ये शरीरादि बाहरी
दव्वं पि	- द्रव्य भी
अण्णं होज्ज	- अन्य हैं
एवं अण्णत्तं चिंतेहि	- इस प्रकार से अन्यत्व भावना का चिंतन करो ॥२३॥

भावार्थ– हे जीव! ज्ञान दर्शन ही आत्मा है। ये आत्मा के है इसके अलावा ये शरीर आदि बाहरी द्रव्य भी अन्य हैं। भिन्न हैं। आत्मा के नहीं है। इस प्रकार से निरंतर चिंतन करो।

• अन्यथा वेद पाण्डित्यं शास्त्र पाण्डित्य मन्यथा।
अन्यथा परमं तत्त्वं लोका क्लिश्यन्ति चान्यथा॥
॥प. प्र. टी १/२३॥

अर्थ– वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही है। नय प्रमाण रूप है। तथा ज्ञान की पंडिताई कुछ और ही है। वह आत्मा निर्विकल्प है। नय प्रमाण निक्षेप रहित वह परमतत्त्व जो केवल आनंद रूप है और ये लोग अन्य ही मार्ग में लगे हुए है। तो वृथा क्लेश कर रहे है।

५. संसार अनुप्रेक्षा

परिभ्रमण का कारण

पंच विहे संसारे जाइ जरा-मरण-रोगभय पउरे ।
जिणमग्गमपेच्छंतो जीवो परिभमदि चिरकालं ॥२४॥

अन्वयार्थ:-

जीवो	- यह जीव
जिणमग्गमपेच्छंतो	- जिनमार्ग अर्थात् मोक्षमार्ग को न जानता हुआ
पउरे जाइ जरा मरण	- प्रचुर जन्म, बुढ़ापा, मरण
रोग भय	- रोग भय से युक्त
पंच विहे संसारे	- पांच प्रकार के संसार में
चिरकालं	- दीर्घकाल तक
परिभमदि	- परिभ्रमण करता है ॥२४॥

भावार्थ- यह संसारी जीव जिनमार्ग/जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताया हुआ मोक्ष मार्ग को न जानता हुआ अथवा उसमें श्रद्धान न करता हुआ प्रचुर जन्म, बुढ़ापा मरण, रोग, भय से युक्त, द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव और भव रूप, पांच प्रकार के संसार में दीर्घ काल तक परिभ्रमण करता है।

विराग-सुमन

• जागो जागरण तुम्हारी क्षमता है, तुम्हारी संभावना है
जैसे बीज में वृक्ष छिपा है ऐसे ही तुम में परमात्मा छिपा है।
(दूर नहीं है मंजिल कृति से)

१. द्रव्य परिवर्तन संसार

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिया हु जीवेण।
असयं अणंतखुत्तो पोग्गल परियट्ट संसारे ॥२५॥

अन्वयार्थ:-

पोग्गल परियट्ट संसारे	- पुद्गल परिवर्तन रूप संसार में
जीवेण	- इस जीव के द्वारा
खलु सव्वे पुग्गला	- नियम से सम्पूर्ण पुद्गलों को
अणंत खुत्तो	- अनंत क्षेत्र प्रमाण अनंत बार
एगे हु	- अकेले ही
भुत्तुज्झिया	- भोगकर छोड़ा गया और फिर उसे
असयं	- खाया गया/भोगा गया ॥२५॥

भावार्थ- इस जीव के द्वारा सभी पुद्गलों को अनंत बार भोग कर छोड़ा गया है तथा पुन: उन्हीं को असकृत (अनेक बार) अकेले ही भोगा गया इस प्रकार अनंत क्षेत्र प्रमाण परिवर्तन को पुद्गल परिवर्तन कहते हैं।

विशेषार्थ- संसरण करने को संसार कहते हैं, जिसका अर्थ परिवर्तन है। यह जिन जीवों के पाया जाता है वे संसारी हैं। परिवर्तन के पांच भेद हैं-द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिवर्तन और भाव परिवर्तन। द्रव्य परिवर्तन के दो भेद हैं। नोकर्म द्रव्य परिवर्तन, और कर्म द्रव्य परिवर्तन। नोकर्म द्रव्य परिवर्तन का स्वरूप जैसे-किसी एक जीव ने तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों को एक समय में ग्रहण किया। अनन्तर

वे पुद्गल स्निग्ध या रुक्ष स्पर्श तथा वर्ण आदि के द्वारा जिस तीव्र, मन्द और मध्यम भावरूप से ग्रहण किये थे उस रूप से अवस्थित रहकर द्वितीयादि समयों में निर्जीर्ण हो गये। तत्पश्चात् अगृहीत स्निग्ध या रुक्ष स्पर्श तथा वर्ण और गन्ध आदिके द्वारा जिस तीव्र, मन्द और मध्यम भावरूप से ग्रहण किये थे और बीच में ग्रहीत परमाणुओं को अनन्त बार ग्रहण करके छोड़ा। तत्पश्चात् जब उसी जीव के सर्वप्रथम ग्रहण किये गये वे ही नोकर्म परमाणु उसी प्रकार से नोकर्म भाव को प्राप्त होते हैं तब यह सब मिलकर एक नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन होता होता है। तथा कर्मद्रव्यपरिवर्तन का स्वरूप-एक जीवने आठ प्रकार के कर्मरूपसे जिन पुद्गलों को ग्रहण किया, वे समयाधिक एक आवलीकालके बाद द्वितीयादिक समयोमें झर गये। पश्चात् जो क्रम नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन में बतलाया है उसी क्रम से वे ही पुद्गल उसी प्रकार से उस जीव के जब कर्मभाव को प्राप्त होते हैं तब यह सब एक कर्म द्रव्यपरिवर्तन कहलाता है। इसे ही पुद्गल परिवर्तन संसार कहते हैं।

• भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान् मया सर्वेपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा॥
॥इष्टोपदेश ३०॥

अर्थ– मोह से मैंने सभी पुदगल परमाणुओं को बार-बार भोगा और छोड़ा है। अब जूठन के समान उन त्यक्त पदार्थों के प्रति मुझ बुद्धि मान की क्या इच्छा हो सकती है? अर्थात् अब उनके प्रति इच्छा ही नहीं है।

२. क्षेत्र परिवर्तन संसार

सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं।
उग्गाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्त संसारे ॥२६॥

अन्वयार्थ:-

खेत्त संसारे	-	क्षेत्र संसार में
उग्गाहणेण	-	जघन्य उत्कृष्ट अनेक प्रकार की अवगाहना के द्वारा
सव्वम्हि लोय खेत्ते	-	सम्पूर्ण लोक के प्रत्येक क्षेत्र में
परिभमिदो	-	परिभ्रमण करते हुए
तं णत्थि	-	एक भी ऐसा प्रदेश नहीं है
जं	-	जहां (यह जीव)
कमसो बहुसो	-	क्रम से अनेक बार
उप्पण्णं ण	-	उत्पन्न नहीं हुआ हो

भावार्थ- क्षेत्र परिवर्तन रूप संसार में जघन्य उत्कृष्ट आदि अनेक प्रकार की अवगाहना शरीर की ऊंचाई के द्वारा सम्पूर्ण लोक के प्रत्येक क्षेत्र में परिभ्रमण करते हुए ऐसा एक भी प्रदेश शेष नहीं है जहां यह जीव क्रम से अनेक बार उत्पन्न नहीं हुआ हो।

विशेषार्थ- जिसका शरीर आकाश के सबसे कम प्रदेशों पर स्थित है ऐसा एक सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव लोकके आठ मध्य प्रदेशों को अपने शरीर के मध्यमें करके उत्पन्न हुआ और क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीकर मर गया। पश्चात् वही जीव पुनः उसी अवगाहना से वहां दूसरी बार उत्पन्न हुआ, तीसरी बार उत्पन्न हुआ, चौथीबार उत्पन्न हुआ। इस प्रकार घनांगुलके असंख्यतावें भाग में आकाश के जितने प्रदेश प्राप्त हों उतनी बार वही उत्पन्न हुआ। पुनः उसने आकाश का एक-एक प्रदेश बढ़ाकरसब लोक को अपना जन्म क्षेत्र बनाया इस प्रकार यह सब मिलकर क्षेत्रपरिवर्तन होता है।

३. काल परिवर्तन-संसार

उस्सप्पिणि अवसप्पिणि समयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुदो य बहुसो परिभमिदो काल संसारे ॥२७॥

अन्वयार्थ:-

परिभमिदो काल संसार - काल संसार में परिभ्रमण करता हुआ

उस्सप्पिणि अवसप्पिणि - उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी

णिरवसेसासु - सम्पूर्ण

समयावलियासु - समयों और आवलियों में

बहुसो जादो या मुदो - (यह जीव) अनेक बार जन्मा और मरा है ॥२७॥

भावार्थ- काल संसार में परिभ्रमण करते हुए उत्सर्पिणी और अव सर्पिणी के संपूर्ण समयों और आवलियों में यह जीव अनेक बार उत्पन्न (जन्मा) हुआ और मरा है।

विशेषार्थ- अब कालपरिवर्तनका स्वरूप-कोई जीव उत्सर्पिणीके प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त हो जाने पर मर गया। पुन: वही जीव दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय में उत्पन्न हुआ और अपनी आयुके समाप्त होने पर मर गया। पुन: वही जीव तीसरी उत्सर्पिणी के तीसरे समय में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इसने क्रमसे उत्सर्पिणी समाप्त की और इसी प्रकार अवसर्पिणी भी। यह जन्मका नैरन्तर्य कहा। तथा इसी प्रकार मरण का भी नैरन्तर्य लेना चाहिए। इस प्रकार यह सब मिलकर एक कालपरिवर्तन है

• नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो। (बृ. स्वयं भू. स्तोत्र)

४. भव परिवर्तन संसार

णिरयाउ जहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा।
मिच्छत्त संसिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी ॥२८॥

अन्वयार्थ:-

मिच्छत्त संसिदेण	-	(इस जीव ने) मिथ्यात्व के संसर्ग से
जाव दु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा	-	उपरिम ग्रैवेयक से लेकर
णिरयादि	-	नरक आदि की
जहण्णादिसु	-	जघन्य आदि
भवट्ठिदी	-	स्थितियो से युक्त होकर
बहुसो वि भमिदो	-	अनेक बार भ्रमण किया ॥२८॥

भावार्थ- मिथ्यात्व के संसर्ग से इस जीवने उपरिम ग्रैवेयक से नरक तिर्यंच मनुष्य और देवों की जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट स्थितियों से युक्त होकर क्रमश: अनेक बार भ्रमण किया है।

विशेषार्थ- भव परिवर्तन का स्वरूप-नरक गति में सबसे जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है। एक जीव उस आयु से वहां उत्पन्न हुआ, पुन: घूम-फिरकर उसी आयु से वहीं उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ और मरा। पुन: आयु के एक-एक समय बढ़ाकर नरक की तेंतीस सागर आयु समाप्ति की। तदनन्तर नरकसे निकलकर अन्तर्मुहूर्त आयुके साथ तिर्यंचगतिमें उत्पन्न हुआ। और पूर्वोक्त क्रमसे उसने तिर्यंचगति की तीन पल्योपम प्रमाण आयु समाप्त की। इसी प्रकार मनुष्यगति में अन्तर्मुहूर्तसे लेकर तीन पल्योपम प्रमाण आयु समाप्त की। तथा देवगतिमें नरक गति के समान आयु समाप्त की। किन्तु देवगति में इतनी विशेषता है कि वहां इकतीस सागरोपम आयु समाप्त होने तक कथन करना चाहिए क्योंकि इस के आगे मिथयात्व के साथ उत्पन्न नहीं हो सकता है। ग्रैवेयक के ऊपर नियम से सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह सब मिलकर एक भवपरिवर्तन है।

५. भाव परिवर्तन-संसार

सव्वे पयडिट्ठिदिओ अणुभाग- पदेस- बंध ठाणाणि।
जीवो मिच्छत्तवसा भमिदो पुण भावसंसारे ॥२९॥

अन्वयार्थः-

जीवो	- इस जीव ने
मिच्छत्तवसा	- मिथ्यात्व के वशीभूत होकर
सव्वेपयडि	- सम्पूर्ण कर्मों की प्रकृति
ट्ठिदिओ अणुभाग पदेस	- स्थिति, अनुभाग और प्रदेश
बंध ठाणाणि	- बंध के स्थानों को
पुण	- अनेक बार प्राप्त कर
भाव संसारे	- भाव संसार में
भमिदो	- भ्रमण किया ॥२९॥

भावार्थ- मिथ्यात्व के वशीभूत होकर इस जीव ने सम्पूर्ण कर्मों की प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध के स्थानों को अनेक बार प्राप्त कर भाव संसार में भ्रमण किया है।

विशेषार्थ- भाव परिवर्तन का स्वरूप-पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई एक जीव ज्ञानावरण प्रकृतिकी सबसे जघन्य अपने योग्य अन्तः कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थिति को प्राप्त होता है। उसके उस स्थिति के योग्य षट्स्थानपतित असंख्यात लोकप्रमाण कषायअध्यवसाय स्थान होते है। और सबसे जघन्य इन कषायअध्यवसायस्थानोके निमित्त से असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागअध्यवसायस्थान होते है इस प्रकार सबसे जघन्य स्थिति, सबसे जघन्य कषाय अध्यवसाय स्थान और सबसे जघन्य अनुभागअध्यवसायस्थानको धारण करने वाले इस जीव के तद्योग्य सबसे जघन्य योगस्थान होता है। तत्पश्चात् स्थिति, कषायअध्यवसायस्थान और अनुभागअध्यवसायस्थान वही रहते हैं, किन्तु योगस्थान

दूसरा दूसरा हो जाता है जो असंख्यात भागवृद्धिसंयुक्त होता है। इसी प्रकार तीसरे, चौथे आदि योगस्थानों में समझना चाहिए। ये सब योगस्थान चार स्थान पतित होते हैं और इनका प्रमाण श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण है। तदनन्तर उसी स्थिति और उसी कषायअध्यवसायस्थान को धारण करलेवाले जीव के दूसरा अनुभागअध्यवसायस्थान होता है। इसके योगस्थान पहलेके समान जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यहाँ भी पूर्वोक्त तीनों बातें ध्रुव रहती हैं किन्तु योगस्थान जगश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागअध्यवसायस्थानोंके होने तक तीसरे आदि अनुभाग अध्यवसायस्थानों में जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यहाँ स्थिति और कषाय अध्यवसायस्थान तो जघन्य ही रहते हैं किन्तु अनुभागअध्यवसायस्थान क्रमसे असंख्यात लोकप्रमाण हो जाते हैं और एक-एक अनुभागअध्यवसास्थानके प्रति जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान होते हैं। तत्पश्चात् उसी स्थिति को प्राप्त होनेवाले जीवके दूसरा कषायअध्यवसायस्थान होता है। इसके भी अनुभागअध्यवसायस्थान और योगस्थान पहले के समान जाना चाहिए। अर्थात् एक-एक कषायअध्यवसायस्थानके प्रति असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागअध्यवसायस्थान होते हैं और एक-एक अनुभागअध्यवसायस्थान के प्रति जगश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण होने तक तीसरे आदि कषाय अध्यवसाय स्थानों में वृद्धिका क्रम जानना चाहिए। जिस प्रकार सबसे जघन्य स्थिति के कषायादि स्थान कहे हैं उसी प्रकार एक समय अधिक जघन्य स्थितिके भी कषायादि स्थान जानना चाहिए और इसी प्रकार एक-एक समय अधिकके क्रमसे तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति तक प्रत्येक स्थितिविकल्पके भी कषायादि स्थानों को जानना चाहिए। अनन्त भागवृद्धि असंख्यात भागवृद्धि संख्यात भागवृद्धि संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि इस प्रकार ये वृद्धि के छह स्थान हैं तथा इसी प्रकार हानि भी छह प्रकारकी है। इनमें से अनन्त भागवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि इन दो स्थानोंके कम कर देनेपर चार स्थान होते हैं। इसी प्रकार सब मूल प्रकृतियों का और उनकी उत्तर प्रकृतियों के परिवर्तनका क्रम जानना चाहिए। यह सब मिलकर एक भावपरिवर्तन होता है।

• बाल मरणाणि बहुसो बहुयाणि अकायमाणि मरणाणि ।
मरिहंति ते वराया जे जिणवयणं ण जाणंति ॥

॥मूलाचार॥

दयादान के अभाव में संसार भ्रमण

पुत्तकलत्त णिमित्तं अत्थं अज्जयदि पाप बुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे ॥३०॥

अन्वयार्थ:-

जीवो	-	जो जीव
पुत्त कलत्त णिमित्तं	-	पुत्र, स्त्री आदि के निमित्त
पाप बुद्धीए	-	पाप बुद्धि से
अत्थं अज्जयदि	-	धन का उपार्जन तो करता है
दया दाणं परिहरदि	-	तथा दया और दान को छोड़ता है
सो	-	वह
संसारे भमदि	-	संसार में घूमता है ॥३०॥

भावार्थ- जो जीव पुत्र, स्त्री आदि कुटुम्बियों के निमित्त पाप बुद्धि (मोह बुद्धि) से धन का उपार्जन तो करता है किंतु दया और दान को नही करता है इसे छोड़ता है। वह दीर्घ काल तक संसार में घूमता है।

• घटिका जलधारेव गलत्यायुः स्थितिर्द्रुतम्।
शरीर मिदमत्यन्त पूतिगन्धि जुगुप्सितम्॥
॥आ.पु.पर्व १७/१६॥

अर्थ- आयु की स्थिति घटीयंत्र के जल की धारा के समान शीघ्रता के साथ गलती जा रही है कम होती जा रही है और यह शरीर अत्यंत दुर्गन्धित तथा घृणा उत्पन्न करने वाला है।

धर्म बुद्धि छोड़ने वाला दीर्घ संसारी

मम पुत्तं मम भज्जा मम धणधण्णोत्ति तिव्व कंखाए।
चइऊण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीह संसारे ॥३१॥

अन्वयार्थ:-

धम्मबुद्धि चइऊण	-	जो जीव धर्म बुद्धि को छोटड़कर ऐसा मानता है कि
मम पुत्तं	-	ये मेरा पुत्र है।
मम भज्जा	-	ये मेरी भार्या है तथा
तिव्व कंखए	-	तीव्र इच्छा/लोभ से युक्त होकर
धणधण्णोत्ति	-	ये धन धान्य आदि मेरा हैं
पच्छा	-	(वह) अन्त में
दीह संसारे परिपडदि	-	दीर्घ संसार में घूमता है ॥३१॥

भावार्थ- जो जीव धर्म बुद्धि को छोड़कर ऐसा मानता है कि ये मेरा पुत्र है, ये मेरे भाई हैं तथा तीव्र इच्छा/लोभ से युक्त होकर ऐसा मानता है कि मेरा गाय, बैल, भैंस आदि पशु धन हैं, ये मेरा गेहूं, चावल आदि धान्य है। वह अन्त में (मृत्यु के पश्चात्) दीर्घ संसार में घूमता है।

• यौवनं वनवल्लीनामिव पुष्पं परिक्षयि।
विषवल्लीनिभा भोग संपदो भङ्गि जीवितम्॥
॥आ.पु.पर्व १७/१५॥

अर्थ- वन में पैदा हुई लताओं के पुष्पों के समान यह यौवन शीघ्र ही नष्ट हो जाने-वाला है, भोगसंपदाएं विषवेल के समान है और जीवन विनश्वर है।

मिथ्या मान्यता से संसार भ्रमण

मिच्छोदयेण जीवो णिंदंतो जोण्हं भासियं धम्मं ।
कुधम्म कुलिंग - कुतित्थं मण्णंतो भमदि संसारे ।।३२।।

यह गाथा मूलाचार में इस प्रकार है

मिच्छत्तेणाच्छण्णो मग्गं जिनदेसिदं अपेक्खंतो ।
भमि हदि भीम कुडिल्ले जीवो संसार कंतारे ।।७०५।।

अन्वयार्थ:-

मिच्छोदयेण जीवो	-	जो जीव मिथ्यात्व कर्म के उदय से
जोण्ह (जिण) भासियं	-	जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुये
धम्मं	-	धर्म की
णिंदंतो	-	निंदा करता है तथा
कुधम्म कुलिंग कुतित्थं	-	कुधर्म, कुतीर्थ और कुलिंग को
मण्णंतो	-	मानता है (वह)
संसारे भमदि	-	संसार में घूमता हैं ।।३२।।

भावार्थ- जो जीव मिथ्यात्व कर्म के उदय से जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित धर्म की निंदा करता है तथा कुधर्म, कुतीर्थ और कुलिंग को मानता है। वह संसार में घूमता है।

● परनिन्दां प्रकुर्वन्ति गुणान् प्रच्छादयन्ति ये।
ते मूढा श्वभ्रगा ज्ञेया भूरिपापवृता खलाः।।
।।प्र. श्रा. २६७।।

अर्थ- जो मनुष्य पर की निंदा करते रहते है और दूसरों के गुणों को ढकते रहते है वे दुष्ट सबसे अधिक पापी है। उन मूर्खों को नरक में ही स्थान मिलता है।

मकारत्रय का सेवन संसार भ्रमण का कारण

हंसूण जीवरासिं महुमंसं सेविऊण सुरपाणं ।
परदव्व परकलत्तं गहिऊण य भमदि संसारे ।।३३।।

अन्वयार्थः-

जीवरासिं हंसूण	-	जो जीव अनेक प्रकार की जीव राशि की हिंसा करके जो
महुमंसं सेविऊण सुरपाणं	-	मधु मांस सेवन करके और शराब को पीता है तथा
पद दव्व य	-	दुसरों के पदार्थ (वस्तुओं) को तथा
परकलत्तं	-	दूसरों की स्त्री को
गहिऊण	-	ग्रहण करता है (वह)
संसारे भमदि	-	संसार में घूमता है ।।३३।।

भावार्थ- जो जीव अनेक प्रकार की जीव राशि की हिंसा करके प्राप्त मद्य (शराब), मांस/ अण्डे, मधु (शहद) का सेवन करके दूसरों के धन, धान्य आदि पदार्थों को ग्रहण करता है। छीनता है वह दीर्घ काल तक संसार में घूमता है।

• रौरवादिषु घोरेषु विशन्ति पिशिताशनाः।
तेष्वेव हि कदर्थ्यन्ते जन्तुघातकृतोद्यमाः।।
।।ज्ञानार्णव ८/१७।।

अर्थ- जो मांस के खालेवाले हैं वे सातवें नरक के रौरवादि बिलों में प्रवेश करते हैं और वहीं पर जीवों को घात कर ने वाले शिकारी आदिक भी पीडित होते हैं।

इन्द्रिय विषयों के कारण संसार में पतन

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो।
मोहंधयार सहिओ तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

अन्वयार्थ:-

जीवो	- यह जीव
मोहं धयार सहिओ	- मोहरूपी अंधकार से युक्त
विसयणिमित्तं	- पंचेन्द्रिय विषयों के निमित्त
अहणिसं	- अहर्निश दिन रात
जत्तेण	- बड़े प्रत्यन पूर्वक
पावं कुणइ	- पाप करता है
तेणदु	- इसी से
संसारे परिपडदि	- संसार में पतित होता है गिरता है परिभ्रमण करता है ॥३४॥

भावार्थ- यह जीव मोहरूपी अंधकार से युक्त होकर पांचों इंद्रियों के विषयों के लिए दिन रात बड़े प्रयत्न से पापों को करता है वह बुरी तरह से संसार में गिरता है/ डूबता है/ परिभ्रमण करता है।

• चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसएसु।
परपरिदावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि॥
॥पंचास्तिकाय १४७॥

अर्थ- बहुल प्रमादचर्या, चित्त की कलुषता, विषयों के प्रति लोलुपता, पर को परिताप देने का भाव और अपवाद वचन बोलना ये पाप का आस्रव कराते हैं।

चौरासी लाख योनियों के भेद

णिच्चिदर धादुसत्तय तरुदस वियलिंदियेसु छच्चेव ।
सुर णिरय तिरय चउरो चोद्दस मणुये सदसहस्सा ॥३५॥

अन्वयार्थ:-

णिच्चिदर	- नित्य निगोद और इतर निगोद
धादु	- पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक, प्रत्येक की
सत्त सद सहस्सा	- (७-७) सात-सात लाख
तरुदस सदसहस्सा	- प्रत्येक वनस्पति कायिक की दस लाख
वियलिंदियेसु	- विकलेंद्रिय अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रियों की प्रत्येक की दो-दो लाख इस तरह इन की
छच्चेव सद सहस्सा	- छह लाख जातियां हुई तथा
सुर णिरण, तिरय	- देव, नारकी और तिर्यंचो की
चउरो सदसहस्सा	- प्रत्येक की चार-चार (४-४) लाख एवं
मणुये चोद्दस सदसहस्सा	- मनुष्यों की चौदह (१४) लाख जातियां इस प्रकार संसारी जीवों की (कुल मिलाकर) चौरासी लाख जातियां होती हैं ॥३५॥

भावार्थ- नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायु कायिक, इन सभी के सात-सात लाख तथा प्रत्येक वनस्पति कायिक के दस लाख दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय प्रत्येक के दो-दो लाख। देव नारकी, तिर्यंचों के चार-चार लाख एवं मनुष्यों की चौदह लाख जातियां है। कुल मिलाकर चौरासी लाख येनियां होती हैं।

संसार में सुख दुःख होते ही है

संजोग विप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
संसारे भूदाणं होदि हु माणं तहावमाणं च ॥३६॥

यह गाथा मूलाचार में इस प्रकार है-

संजोग विप्पओगा लाहालाहं सुहं च दुक्खंच ।
संसारे अणुभूदा माणं च तहावमाणं च ॥७११॥

अन्वयार्थ:-

भूदाणं	-	जीवों को
संसारे दु	-	संसार में नियम से
संजोग विप्पजोगं	-	संयोग और वियोग
लाह च अलाहं	-	लाभ और अलाभ
सुहं च दुक्खं	-	सुख और दुख
तहा माणं च अवमाणं	-	तथा मान और अपमान
होदि	-	होता है ॥३६॥

भावार्थ- जीवों को संसार में नियम से संयोग और वियोग, लाभ और अलाभ, सुख और दुःख तथा मान और अपमान होता है।

> • अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः ।
> नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः॥
> ॥समाधि तंत्र ३८॥
>
> **अर्थ**- जिसके चित्र का रागादिक रूप परिणमन होता है उसी के अपमानादिक होते है। जिसके चित्र का राग द्वेषादिरूप परिणमन नहीं होता उसके अपमान-तिरस्कारादि नहीं होते है।

निश्चयनय से जीव का संसार भ्रमण नहीं

कम्मणिमित्तं जीवो हिंडदि संसार घोर कंतारे ।
जीवस्स ण संसारो णिच्चयणय कम्म विम्मुक्को ॥३७॥

अन्वयार्थः-

जीवो	-	संसारी जीव
कम्म णिमित्तं	-	कर्मों के निमित्त से
घोर संसार कांतारे	-	घनघोर संसार वन में
हिंडदि	-	घूमता है किंतु
णिच्चयणय	-	निश्चय नय से
कम्म विम्मुक्को	-	कर्म से रहित
जीवस्स ण संसारो	-	जीव के संसार नहीं होता है। वह तो संसार से रहित है/मुक्त है/ऐसा जानना चाहिए ॥३७॥

भावार्थ- संसारी जीव कर्मों के निमित्त से घनघोर संसार में घूमता है किंतु शुद्ध निश्चय नय से कर्म से रहित जीव के संसार नहीं होता। वह तो संसार से रहित मुक्त ही है। ऐसा जानना चाहिए।

• निःसारे खलु संसारे सुखलेशोपि दुर्लभः ।
दुःख मेव महत्-तस्मिन् सुखं काम्यति मन्दधीः॥
॥आ. पु. पर्व १७/१७॥

अर्थ- इस असार संसार में सुख का लेश मात्र भी दुर्लभ है और दुःख बड़ा भारी है फिर भी आश्चर्य है कि मंदबुद्धि पुरुष उसमें सुख की इच्छा करते हैं।

हेयोपादेय जीव का कथन

संसारमदिक्कंतो जीवोवादेयमिदि विचिंतिज्जो ।
संसार दुहक्कंतो जीवो सो हेयमिदि विचिंतिज्जो ॥३८॥

अन्वयार्थ:-

संसारं अदिक्कंतो जीवो	- संसार से अतिक्रांत अर्थात् मुक्त जीव
उवादेयं	- उपादेय है, ग्रहण करने के योग्य है।
इदि विचिंतिज्जो	- ऐसे-चिंतन करने योग्य हैं किंतु
संसार दुहक्कंतो जीवो	- संसार के दुखों से आक्रांत/युक्त जीव
हेयं	- हेय है, छोड़ने योग्य है।
इदि विचिंतिज्जो	- ऐसा विचार करना चाहिए ॥३८॥

भावार्थ- संसार से रहित मुक्त जीव उपादेय है, ध्यान आदि के द्वारा ध्येय है। चिंतन के योग्य होने से चिंतनीय हैं, किंतु संसार के दुःखों से युक्त संसारी जीव हेय हैं, छोड़ने योग्य हैं। ऐसा विचार करना चाहिए।

● पातयन्ति भवावर्त्ते मे त्वां ते नैव बान्धवा:।
बन्धुतां ते करिष्यन्ति हितमुद्दिश्य योगिनः॥
॥ज्ञा. आ.॥

अर्थ- हे आत्मन्! जो तुझे संसार के चक्र में डालते हैं, वे तेरे बांधव (हितैषी) नहीं है, किन्तु जो मुनिगण तेरे हित की वांछा कर के बंधुता करते हैं, अर्थात् हित का उपदेश करते हैं, स्वर्ग तथा मोक्ष का मार्ग बताते हैं, वे ही वास्तव में तेरे सच्चे और परम मित्र हैं।

६. लोक अनुप्रेक्षा

लोक और उसके भेद

जीवादि-पदव्थाणं समवाओ सो णिरुच्चए लोगो।
तिविहो हवेइ लोगो अधमज्झिम-उड्ढ भेएण ॥३९॥

अन्वयार्थ:-

जीवादि पदव्थाणं समवाओ	-	जो जीवादि पदार्थों का समवाय/समूह है
सो लोगो निरुच्चए	-	वह लोक शब्द से निरुक्त है अर्थात् उसे "लोक" कहते हैं। और वह लोक
अधमज्झिम उड्ढ भेएण	-	अधो मध्य और ऊर्ध्व के भेद से
तिविहो हवेइ	-	तीन प्रकार का होता है ॥३९॥

भावार्थ- जो जीवादि पदार्थों का समवाय/ समूह है। वह लोक शब्द से निरुक्त हैं अर्थात उसे "लोक" कहते हैं। और वह लोक अधो, मध्य और ऊर्ध्व के भेद से तीन प्रकार का होता है।

• जइ पुण सुद्ध-सहावा सव्वे जीवा अणाइ-काले वि।
तो तव-चरण-विहाणं सव्वेसिं णिप्फलं होदि॥
॥का. अनु. २००॥

अर्थ- यदि सब जीव सदा शुद्ध स्वभाव हैं तो सबका तपश्चरण करना निष्फल होता है।

तीनों लोकों की संरचना

णिरया हवंति हेट्ठा मज्झे दीवंबुरासयोऽसंखा ।
सग्गो तिसट्ठि भेओ एत्तो उड्ढ हवे मोक्खो ।।४०।।

अन्वयार्थ:-

हेट्ठो णिरया हवंति	- (लोक के) अधोलोक में नरक होते हैं
मज्झे असंख दीव अंबुरासयो	- मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं
उड्ढे सग्गो तिसट्ठिभेओ	- ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग सहित त्रेसठ पटलों के भेद हैं
मोक्खो हवे	- इसके आगे मोक्ष होता है अर्थात् सिद्धलोक है ।।४०।।

भावार्थ- अधोलोक में सात नरक होते हैं। मध्यलोक में असंख्यात् समुद्र होते हैं। ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग सहित त्रेसठ पटलों के भेद हैं। इसके आगे मोक्ष अर्थात् सिद्धलोक है।

• क्रूरता दण्डपारुष्यं वञ्चकत्वं कठोरता।
निस्त्रिंशत्वं च लिङ्गानि रौद्रस्योक्तानि सूरिभि:।।३७।।

• अर्थ- क्रूरता (दुष्टता), दंडकी, वञ्चकता, कठोरता।
निर्दयता ये रौद्रध्यान के चिन्ह आचार्यों ने कहे हैं।।

• विस्फुलिङ्गनिभे नेत्रे भ्रूवक्रा भीषणाकृति:।
कम्प: स्वेदादिलिङ्गानि रौद्रे बाह्यानि देहिनाम्।।३८।।

अर्थ- अग्निके फुलिंग समान लाल नेत्र हों, भौंहें टेढ़ी हो, भयानक आकृति हो, देह में कंपन हो और पसीना हो इत्यादि रौद्रध्यान के बाह्य चिन्ह हैं।

(ज्ञानार्णव।)

स्वर्ग के ६३ पटल

इगतीस सत्तचत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क चदुकप्पे।
तित्तिय एक्केकेंदय णामा उडु आदि तेसट्ठी ॥४१॥

अन्वयार्थ:-

इगतीस-सत्त चत्तारि	- इकतीस, सात, चार
दोण्णि एक्क चदुकप्पे छक्क	- दो, एक, एक, चार कल्पों में छः
तित्तिय एक्क एक्क उडुणामादि	- तीन-तीन के तीन तथा इसके आगे एक, एक पटल है इस प्रकार ऋजु आदि नामवाले
तेसट्टी इंदय	- त्रेसठ इंद्रक/पटल/विमान है।

भावार्थ- ऊर्ध्व लोक में त्रेसठ पटल निम्न प्रकार है सौधर्म ऐशान स्वर्ग में इक्तीस पटल हैं। सानत कुमार माहेन्द्र स्वर्ग में सात पटल ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर युगल में चार पटल हैं। लान्तव कापिष्ठ में दो पटल हैं शुक्र महाशुक्र युगल में एक पटल है। शतार-सहस्रार युगल में एक पटल है। आनत प्राणत, आरण अच्युत, इन दो युगलों में छः पटल हैं अधो, मध्य और ऊर्ध्व, ग्रैवेयक में तीन तीन के तीन कुल नौ पटल है नव अनुदिश विमानों में एक पटल है। पांच अनुत्तरों में एक पटल है। इस प्रकार ऋजु आदि नाम वाले त्रेसठ इन्द्रक आदि पटल (विमान) हैं।

> • लवलोए कालोए अंतिम-जलहिम्मि जलयरो संति।
> सेस-समुद्देसु पुणो ण जलयरा संति णियमेण॥
> ॥का. अनु. १४४॥
>
> **अर्थ-** लवणोद समुद्र में, कालोद समुद्र में और अंत के स्वयंभू रमण समुद्र में जलचर जीव है। किंतु शेष बीच के समुद्रों में नियम से जलचर जीव नहीं हैं।

उपयोगों का फल

असुहेण णिरय-तिरियं, सुहउवजोगेण दिविज-णर-सोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं एवं लोयं विचिंतिज्जो ॥४२॥

अन्वयार्थ:-

असुहेण णिरय तिरियं	-	(यह जीव) अशुभ उपयोग से नरक तर्यंच गति को
सुह उवजोगेण	-	शुभोपयोग से
दिविज णर सोक्खं	-	देव तथा मनुष्यों के सुखों को तथा
सुद्धेण लहइ सिद्धिं	-	शुद्धोपयोग से मोक्ष को प्राप्त करता है
एवं लोयं विचिंतिज्जो	-	इस प्रकार लोक के स्वरूप का विचार करना चाहिए ॥४२॥

भावार्थ- यह जीव अशुभोपयोग से नरक तिर्यंच गति के दु:खों को प्राप्त करता है तथा शुभोपयोग से देव तथा मनुष्यों के सुखों को एवं शुद्धोपयोग से मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार लोक के स्वरूप का निरंतर चिंतन करना चाहिए।

● सव्वे कम्म-णिबद्धा संसरमाणा अणइ-कालम्हि।
पच्छा तोडिय बंधं सिद्धा सुद्धा धुवं हौंति॥
॥का. अनु. २०२॥

अर्थ- सभी जीव अनादिकाल से कर्मो से बंधे हुए है इसी से संसार में भ्रमण करते हैं। पीछे कर्म बंधन को तोड़कर जब निश्चल सिद्ध पद पाते हैं तब शुद्ध होते हैं।

७. अशुचित्व-अनुप्रेक्षा

शरीर की अशुचिता

अट्ठीहिं पडिबद्धं मंस विलित्तं तएण ओच्छण्णं ।
किमि संकुलेहिं भरियं अचोक्खं देहं सदाकालं ।।४३।।

यह गाथा मूलाचार में इस प्रकार है-

मंसट्ठि सिंभव सरूहिर चम्म पित्तं तमुत्त कुणिप कुडिं ।
बहु दुक्ख रोग भायण सरीरमसुभं वियाणाहि ।।७२६।।

अन्वयार्थः-

अट्ठीहिं पडिबद्धं	-	जो हड्डियों से बंधा है।
मंसविलित्तं	-	मांस से लिप्त है।
तएण ओच्छण्णं	-	त्वचा/चर्म से आच्छादित है।
किमि संकुलेहिं भरियं	-	कृमियों के समूहों से भरा हुआ है ऐसे
अचोक्खं देहं सदाकालं	-	अपवित्र शरीर के विषय में हमेशा चिंतन करो ।।४३।।

भावार्थ- जो हड्डियों के बंधनों से बंधा हुआ है, मांस से लिप्त है, चमड़े से ढका हुआ है तथा कृमि (दो इन्द्रिय आदि जीवों) से जो भरा हुआ है। ऐसे अपने अपवित्र शरीर के विषय में निरंतर चिंतन करना चाहिए।

• सुट्ठु पवित्तं दव्वं सरस-सुगंधं मणोहरं जं पि।
देह-णिहित्तं जायदि घिणावणं सुट्ठु दुग्गंधं ।।
।।का. अ. ८४।।

सड़न गलन शरीर का स्वभाव

दुग्गधं बी भच्छं कलिमलभरिदं अचेयणं मुत्तं ।
सडणपडणसहावं देहं इदि चिंतए णिच्चं ॥४४॥

शरीर सप्तधातुमय है

रस रुहिर मंसमेदट्ठी मज्जसकुलं मुत्तपूयकिमिबहुलं ।
दुग्गंधमसुचि चम्ममयमणिच्चमचेयणं पडणं ॥४५॥

अन्वयार्थ:-

अचेयणं देहं	-	(हे जीव! यह) अचेतन शरीर
दुगधं-बीभच्छं	-	दुर्गंधित है वीभत्स-घ्रणित हैं
रस रुहिर मंस मेदट्ठी	-	रस रुधिर (खून) मांस, मेदा हड्डी
मज्ज मुत्त	-	मज्जा मूत्र पीव इत्यादि
कलिमल भरिदं	-	गंदे मलों से भरा हुआ है
चम्ममयं, मुत्तं	-	चर्ममय है, मूर्तिक हैं
दुग्गंधं	-	दुर्गंधित है
अचयेणं, अणिच्चं	-	अचेतन है अनित्य है
पडणं	-	विनाशीक है
सडणपडणसहावं	-	सड़ना (गलना) पड़णा (मृत्यु को प्राप्त होना) इसका स्वभाव है तथा यह
किमि वहुलं	-	कृमि वहुल है अर्थात् इसमें कृमि आदि बहुत सारे जीव पाये जाते हैं
इदि असुचि देहं	-	इस प्रकार अपवित्र शरीर का
णिच्चं चिंतए	-	हमेशा चिंतन करो ॥४४-४५॥

भावार्थ- हे जीव ! यह अचेतन शरीर, दुर्गंधित, घृणित हैं। रस रक्त माँस मेदा हड्डी, मज्जा, मूत्र पीव इत्यादि गंदे मलों से भरा हुआ है तथा यह चर्ममय हैं, मूर्तिक है, दुर्गंधित हैं, अचेतन व अनित्य है। सड़ना गलना और मृत्यु को प्राप्त होना इसका स्वभाव है। तथा यह बहुत सारे कृमि आदि जीवों से भरा हुआ है। अत: तू निरंतर इस अपवित्र शरीर के विषय में चिंतन कर उससे विरक्त हो।

● अभिमतफल सिद्धेरभ्युपाय: सुबोध:,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत् प्रसादात्मबुद्धि:
न हि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति ॥
॥पंचास्तिकाय टीका॥

अर्थ- अभिमत-इष्टफल की सिद्धि का सुन्दर उपाय सम्यग्ज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से मिलता है, सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त भगवान सर्वज्ञ (जिनेन्द्र) से होती है। इसलिए आप्त पूज्य है, क्योंकि आप्त की कृपा से पुरुषों की बुद्धि पूज्य हो जाती है। तथा साधु सज्जन पुरुष तो उपकारी द्वारा अपना किया हुआ उपकार वास्तव में कभी भूलते ही नहीं हैं।

देहातीत आत्मा की शुद्धता का चिंतन

देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणंतसहणिलयो।
चोक्खो हवेइ अप्पा इदिणिच्चं भावणं कुज्जा ॥४६॥

अन्वयार्थ:-

कम्म रहिओ	-	कर्म से रहित और
देहादो वदिरित्तो	-	शरीरादि से रहित
अणंत सुहणिलयो	-	अनंत सुख का निलय स्वरूप
चोक्खो अप्पा हवेइ	-	सच्ची आत्मा होती है
इदि णिच्चं	-	ऐसी हमेशा
भावणं कुज्जा	-	भावना करो ॥४६॥

भावार्थ- ज्ञानावरणादि आठ द्रव्य कर्म रागद्वेष आदि भाव कर्म तथा शरीर आदि नोकर्म से रहित, अनंत सुख का घर हमारी सच्ची आत्माहोती है। ऐसा हमेशा चिंतन करना चाहिए।

• जो पर-देह विरत्तो णिम-देहे ण य करेदि अणुरायं।
अप्प-सरूव सुरत्तो असुइत्ते भावणा तस्स ॥
॥का. अनु. ८७॥

अर्थ- जो दूसरों के शरीर से विरक्त है और अपने शरीर से अनुराग नहीं करता है, तथा आत्मा के शुद्ध चिद्रूप में लीन रहता है उसी की अशुचित्व में भावना हैं।

८. आस्रव अनुप्रेक्षा

कर्मास्रव के कारण

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति।
पण पण चउ तिय भेदा सम्मं परिकित्तिदा समये ॥४७॥

यह गाथा मूलाचार में इस प्रकार है-

मिच्छत्ता विरदीहिं य कसाय जोगेहिं जं च आसवदि।
दंसण विरमणणिग्गहणिरोधणेहिं तु णासवदि ॥७४४॥

अन्वयार्थ:-

पण मिच्छत्तं	-	पांच मिथ्यात्व
पण अविरमणं	-	पांच अविरति
चउ कसाय य	-	चार कषाय और
तिय भेदा जोगा	-	तीन प्रकारके योगों से
आसवा होंति	-	आस्रव होता है ऐसा
समये	-	आगम / शास्त्रों में
सम्मं परिकित्तिदा	-	अच्छी तरह से कहा गया है ॥४७॥

भावार्थ - पांच प्रकार के मिथ्यात्व, पांच प्रकार के अविरत, चार प्रकार की कषायें तथा तीन प्रकार के योग ये सत्रह कर्मों के आस्रव के हेतु हैं। ऐसा जिनागम (शास्त्रों) में अच्छी तरह से कहा गया है।

- आसन्नभव्यता कर्महानिसंज्ञित्वशुद्ध परिणामा:।
सम्यक्त्वहेतुरन्तर्बाह्य उपदेशकादिश्च ॥
॥उमास्वामि-श्रावका॥.२३॥

मिथ्यात्व और अविरति के भेद

एयंत विणय विवरिय संसयमण्णाण मिदि हवे पंच।
अविरमणं हिंसादी पंचविहो सो हवइ णियमेण ॥४८॥

अन्वयार्थ:-

एयंत विणय विवरिय	-	एकांत, विनय, विपरीत
संसय अण्णाणं	-	संशय और अज्ञान
इदि पंच हवे	-	इस तरह ये पांच प्रकार के मिथ्यात्व हैं और
णियमेण	-	नियम से
हिंसादी पंच विहो	-	हिंसादि पांच प्रकार के
सो अविरमणं हवइ	-	वे अविरत होते हैं ॥४८॥

भावार्थ- एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान इस तरह से ये पांच प्रकार का मिथ्यात्व हैं। तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, एवं परिग्रह ये पांच प्रकार के अविरत हैं।

• दुर्जनस्य च सर्पस्य समता तु विशेषत:।
छिद्राभिलषिता नित्यं द्विजिह्वं पृष्ठि भक्षणम् ॥
॥भ:व्यधर्मोपदेश उपासकाध्यन ॥२३॥

अर्थ- दुर्जन पुरुष की और सर्प की विशेष रूपसे समानता है। दोनों ही सदा छिद्रों के (साँप बिल के और दुर्जन दोषों के) अभिलाषी होते है दो जिह्वा वाले हैं और पीठ पीछे अक्षण करते हैं।

कषाय और योग के भेद

कोहे माणो माया लोहो विय चउविहं कसायं खु ।
मण वचकायेण पुणो जोगो तिवियप्पमिदि जाणे ।।४९।।

यह गाथा मूलाचार में इस प्रकार है-

कोहो माणो लोभो य दुरासय कसायरिऊ
दोस सहस्सावासा दुक्ख सहस्साणि पावंति ।।७३७।।

अन्वयार्थः-

कोहो माणो माया य लोहा	-	क्रोध, मान, माया और लोभ ये
खु चउविहं कसायं	-	नियम से चार प्रकार की कषाय हैं।
पुणो मण वच कायेण	-	और मन, वचन, काय के भेद से
जोगो विवियप्पं	-	योग तीन प्रकार का है
इदि जाणे	-	ऐसा जानो ।।४९।।

भावार्थ- क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार प्रकारकी कषायें हैं और मन, वचन तथा काय के भेद से तीन प्रकार का योग है। ऐसा जानना चाहिए।

• जीवन में संत दर्शन तो बहुत होते है, लेकिन दर्शन के उपरान्त
जो हृदय में समर्पण का भाव पैदा होता है, भक्ति का भाव जगता है,
तीव्र लालसा उत्पन्न होती है, वही वास्तव में दर्शन है,
शेष तो मात्र कोरा प्रदर्शन है।

।।आ. श्री विराग सागर जी।।

योग के शुभाशुभ भेद

असुहेदर भेदेण दु एक्केक्कं वण्णिदं हवे दुविहं।
आहारादी सण्णा असुहमणं इदि विजाणेहि ॥५०॥

अन्वयार्थः-

दु	- अथवा
एक्केक्कं	- प्रत्येक
असुहेदर	- अशुभ और शुभ के
भेदेण	- भेद से
दुविहं हवे	- दो-दो प्रकार के होते हैं ऐसा
वण्णिदं	- आगम में कहा है तथा
आहारादी सण्णा	- आहार आदि संज्ञा से युक्त मन
असुहमणं	- अशुभ मन है
इदि विजाणेहि	- ऐसा जानो ॥५०॥

भावार्थ- अथवा प्रत्येक योग के शुभ और अशुभ के भेद से दो-दो भेद हैं। अर्थात् शुभमन और अशुभमन/शुभ वचन और अशुभ वचन, शुभकाय और अशुभकाय ऐसा आगम शास्त्रों में कहा गया हैं। इनमें आहार, भय, मैथुन परिग्रह रूप संज्ञाओं से युक्त मन अशुभ मन है। ऐसा जानना चाहिए।

● संत के दर्शन करने के बाद अंतरंग में जो पुनः दर्शन की अभिलाषा, भावना, सागर की तरह हिलोरें लेने लगती है, वास्तव में अंतरंग की वही अंतहीन भक्ति मुक्ति की परिचायक है।

॥आचार्य श्री विराग सागर जी॥

अशुभ भाव ही अशुभ मन है

किण्हादि तिण्णिलेस्सा करणजसोक्खेसु गिद्धि परिणामो।
ईसा विसादभावो असुहमणं त्तिय जिणावेंति ॥५१॥

अन्वयार्थ:-

किण्हादि तिण्णिलेस्सा	-	कृष्णा आदि तीन अशुभ लेश्यायें
करणजय सोक्खेसु	-	इंद्रियों से उत्पन्न सुखों में
गिद्धि परिणामो	-	गिद्धि/आसक्ति रूप परिणाम
ईसा य विसाद भावो	-	ईर्षा और विषाद रूप भाव
असुहमणं	-	अशुभ मन है
त्ति जिणावेंति	-	ऐसा जिनेंद्र भगवान कहते हैं ॥५१॥

भावार्थ- कृष्णा, नील, कापोत ये तीन अशुभ लेश्यएं, इंद्रियों से उत्पन्न सुखों में आसक्ति रूप परिणाम, ईर्षा और विषाद रूप भाव अशुभ मन है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

कषाय नोकषाय रूप परिणाम अशुभ मन है

रागो दोसो मोहो, हास्सादि णोकसायपरिणामो।
थूलो वा सुहुमो वा, असुहमणो त्तिये जिणा वेंति ॥५२॥

अन्वयार्थ:-

रागो दोसो मोहो हास्सादि	-	राग द्वेष मोह, हास्य आदि
णोकसाय	-	नो कषाय
थूलो	-	स्थूल
सुहुमो	-	सूक्ष्म
असुहमणो	-	अशुभ मन
वेंति	-	कहना

भावार्थ- सभी प्रकार के स्थूल व सूक्ष्म राग द्वेष, मोह, हास्य आदि नो कषाय रूप परिणाम को जिनेन्द्र भगवान ने अशुभ मन कहा है।

अशुभ वचन और अशुभ काय

भित्तित्थिरायचोर कहा ओ वयणं वियाण असुहमिदि ।
बंधण छेदण मारण किरिया सा असुह-कायेत्ति ॥५३॥

अन्वयार्थ:-

भित्तित्थिरायचोर कहाओ	- भक्त कथा, स्त्री कथा, राज कथा, चोर कथा रूप वचन
इदि	- इस प्रकार से
असुह वयणं	- अशुभ वचन है तथा तथा
बंधण छेदण मारण	- बांधना, मारना, छेदना
किरिया	- इत्यादि क्रिया
सा असुह कायेत्ति	- वह अशुभ काय है
वियाण	- ऐसा जानो ॥५३॥

भावार्थ- भोजन कथा, स्त्री कथा, राजकथा, चोर कथा इन चार विकथ रूप वचन अशुभ वचन है। तथा बांधना, मारना, छेदना, इत्यादि क्रिया करना अशुभ काय है। ऐसा जानना चाहिए।

• बालता प्रकृतिर्यस्य तस्य कुण्ठा मतिर्भवेत् ।
पित्तला प्रकृतिर्यस्य तस्य तीव्रामतिर्भवेत् ॥
॥व्रतोद्योतन श्रावका ॥२०६॥

अर्थ- जिस पुरुष की वायु प्रधान प्रकृति होती है, उसकी बुद्धि कुण्ठित होती है तथा जिस पुरुष की प्रकृति पित्त प्रधान होती है, उसकी बुद्धि तीव्र होती है।

व्रत समिति रूप शुभ परिणाम शुभ मन है

मोत्तूण असुहभावं पुव्वुत्तं णिरवसेसदो दव्वं।
वद-समिदि-सील संजम परिणामं सुहमणं जाणे ॥५४॥

अन्वयार्थ:-

पुव्वुत्तं दव्वं	- पूर्वोक्तद्रव्य और
असुह भावं	- अशुभ भावों को
णिरवसेसदो मोत्तूण	- पूर्णत: छोड़कर
वद समिदि सील	- व्रत समिति शील और
संजम परिणामं	- संयम रूप परिणामों का होना
सुह मणं जाणे	- शुभ मन है ऐसा जानो ॥५४॥

भावार्थ- पूर्वोक्त आस्रव बंध में कारण भूत द्रव्य एवं भावों को पूर्णत: छोड़कर व्रत, समिति, शील और संयम रूप परिणाम को शुभ मन जानना चाहिए।

• रयण-त्तय-जुत्ताणं अणुकूलं जो चरेदि भत्तीए।
भिच्चो जह रायाणं उवयारो सो हवे विणओ॥
॥का. अ. ४५८॥

अर्थ- जैसे सेवक राजा के अनुकूल प्रवृत्ति करता है वैसे ही रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र धारक मुनियों के अनुकूल भक्तिपूर्वक प्रवृत्ति करना उपचार विनय है।

शुभ वचन और शुभ काय का कथन

संसार छेद कारण वयणं, सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठं।
जिणदेवादिसुपूजा सुहकार्यं त्तिय हवे चेट्ठा ।।५५।।

अन्वयार्थः-

संसार छेद कारणं	-	संसार विच्छेद के कारण
वयणं सुहवयणं इदि	-	वचन शुभवचन है।
जिणदेवादिसु पूजा	-	जिनेन्द्र देव आदि की सच्ची पूजा रूप
य चेट्ठा हवे	-	जो चेष्टा है।
सुहकायं त्ति	-	शुभ काय है ऐसा
जिणुद्दिट्ठं	-	जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ।।५५।।

भावार्थ- संसार परिभ्रमण को विच्छेद करने में कारण भूत वचन शुभवचन है तथा जिनेन्द्र देव आदि की सच्ची पूजा रूप जो चेष्टा है वह शुभ काय है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

● पूर्वाह्णे हरते पापं मध्याह्ने कुरुते श्रियम्।
ददाति मोक्षं सन्ध्यायां जिनपूजा निरन्तरम् ॥
।।उमास्वामि श्रा. १८१।।

अर्थ- निरन्तर प्रभात में की गई जिनपूजा पाप को दूर करती है, मध्याह्न में की गई जिनपूजा लक्ष्मी (अंतरंग लक्ष्मी) को करती है और संध्या काल में की गई जिनपूजा मोक्ष को देती है।

संसार-परिभ्रमण कर्मास्रव के कारण

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिये दुक्खजलचराकिण्णे ।
जीवस्स परिब्भमणं कम्मासवकारणं होदि ।।५६।।

अन्वयार्थ:-

दुक्खजलचराकिण्णे	-	दुख रूपी जलचरों से भरे हुए
बहुदोसवीचिये	-	बहुत दोष रूपी तरंगों से युक्त
जम्मसमुद्दे	-	जन्म मरण रूप संसार समुद्र में जो
जीवस्स परिब्भमणं	-	जीव का परिभ्रमण हो रहा है।
कारणं	-	इस का मूल कारण
कम्मासवकारणं होदि	-	कर्मों का आस्रव है ।।५६।।

भावार्थ- दुख रूपी जलचर (मगरमच्छों) से भरे हुए, बहुत दोषों रूपी तरंगो से युक्त जन्म मरण रूप महा समुद्र में जो जीव का परिभ्रमण हो रहा है। उसका मुल कारण एक मात्र कर्मों का आस्रव है।

• देवहं सुत्थहं मुणिवरहं जो विद्देसु करेइ।
णियमें पाउ हवेइ तसु जें संसारू भमेइ ।।
।।प.प्र. २/६२।।

अर्थ- वीतरागदेव, जिनसूत्र और निर्ग्रंथ मुनियों से जो जीव द्वेष करता है, उसके निश्चय से पाप होता है, जिस पाप के कारण से वह जीव संसार में भ्रमण करता है अर्थात् परम्पराय मोक्ष के कारण और साक्षात् पुण्यबंध के कारण जो देव-शास्त्र गुरू है, इनकी जो निंदा करता है उसे नियम सेपाप होता है, पाप से दुर्गति में भटकता है ।

ज्ञानपूर्वक क्रिया मोक्ष का कारण

कम्मासवेण जीवो बूडदि संसारसायरे घोरे ।
जं णाणवसं किरिया मोक्खणिमित्तं परंपरया ।।५७।।

अन्वयार्थ:-

जीवो	-	जय जीव
कम्मासवेण	-	कर्मों के आस्रव से
घोरे संसारसायरे	-	घोर संसार सागर में
बूडदि	-	डूबता है
जं णाणवसं किरिया	-	जो सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक क्रिया है
परंपरया	-	वह परंपरा से
मोक्खणिमित्तं	-	मोक्ष का निमित्त कारण है ।।५७।।

भावार्थ- यह जीव कर्मों के आस्रव से घोर संसार सागर में डूबता है। किंतु जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक होने वाली जो सम्यक् शुभ क्रिया (आचरण) है वही परंपरा से मोक्ष का निमित्त कारण है।

• ये वदन्ति स्वयं स्वस्य गुणान् दोषान् पुनर्नच ।
गर्दभादि कुयोनि ते श्वभ्रं वा यान्ति दुर्द्धियः ।।
।।प्रश्नोत्तर श्रावका.।।

अर्थ- जो मूर्ख अपने गुणों को अपने आप कहते फिरते है और अपने दोषों को कभी प्रगट नहीं करते वे गधे आदि कुयोनियों में जन्म लेते है अथवा नरक में जाकर दु:ख भोगते हैं।

आस्रव मोक्ष का साक्षात कारण नहीं

आसव हेदू जीवो जम्मसमुद्दे णिमज्जदे खिप्पं ।
आवसकिरिया तम्हा मोक्ख णिमित्तं ण चिंतेज्जो ।।५८।।

अन्वयार्थ:-

जीवो	-	यह जीव
आसव हेदू	-	आस्रव के कारण
खिप्पं	-	शीघ्र ही
जम्मसमुद्दे	-	जन्म (मरण) रूप समुद्र में
णिमज्जदे	-	डूबता है
आसवकिरिया तम्हा	-	आस्रव रूप क्रिया
मोक्ख णिमित्तं	-	मोक्ष का (साक्षात) निमित्त कारण नहीं है।
चिंतेज्जो	-	ऐसा चिंतन करो ।।५८।।

भावार्थ- यह जीव आस्रव के कारण ही जन्म, मरण रूप संसार में डूबता है। अत: शुभ आस्रव रूप क्रिया मोक्ष का साक्षात निमित्त कारण नहीं है। ऐसा जानना चाहिए।

• रागो जस्स पसत्थो अणुकंपा संसिदो य परिणामो ।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ।।
।।पंचास्तिकाय ४३।।

अर्थ- जिस जीव के प्रशस्त राग है, अनुकम्पा सहित परिणाम हैं और चित्त कलुषता रहित है उस जीव को पुण्य का आस्रव होता है।

परम्परा से भी आस्रव से मोक्ष नहीं

पारंपज्जाएण दु आसवकिरियाए णत्थिणिव्वाणं।
संसार गमण कारणमिदि णिंदं आसवो जाण ॥५९॥

अन्वयार्थ:-

आसव किरियाए	-	आस्रव रूप किरिया से।
पारंपज्जाएण दु	-	परंपरा से भी
णिव्वाणं णत्थि	-	निर्वाण नहीं होता है।
संसार गमण कारणं	-	वह तो संसार में गमन करने का कारण है। इसलिए
आसवो णिंदं जाण	-	आस्रव को निंदनीय जानो ॥५९॥

भावार्थ- निश्चय नय से शुभ आस्रव रूप क्रिया से परंपरा से भी निर्वाण या मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। क्योंकि वह संसार गमन में कारण है इसलिए निश्चय नय से आस्रव को निंदनीय कहा है।

• सण्णाओ यतिलेस्सा इंदियवसदाय अट्टरुद्दाणि।
णाणं च दुप्पउत्त मोहो पावप्पदो होदि ॥१४८॥
॥पांचास्तिकाय॥

अर्थ- चारों संज्ञाये, तीन अशुभलेश्याएं, इन्द्रिओं की अधीनता, आर्त्त-रौद्र ध्यान, अशुभ कार्यो में लगा हुआ ज्ञान और मोह (मिथ्यात्व) ये पापरूप मोहनीय कर्म के आस्रव के कारण है।

निश्चय से आत्मा के कर्मास्रव नहीं

पुव्वुत्तासव भेदा णिच्छयणयएण णत्थि जीवस्स।
उहयासवणिम्मुक्कं अप्पाणं चिंतए णिच्चं ॥६०॥

अन्वयार्थ:-

पुव्वुत्त आसव भेदा	-	पूर्वोक्त आस्रवों के भेद
णिच्छय णयएण	-	निश्चय नय से
जीवस्स णत्थि	-	जीव के नहीं है
अप्पाणं णिच्चं	-	इसलिए, आत्मा को हमेशा
उहयासव णिम्मुक्कं	-	(द्रव्य भाव रूप) दोनों प्रकार के आस्रव से रहित
चिंतए	-	चिंतन करो।

भावार्थ- पहले कहे हुये आस्रव के भेद निश्चय नय से जीव के नहीं है। इसलिए आत्मा हमेशा द्रव्यास्रव और भावास्रव से रहित चिंतन करना चाहिए।

• मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः ॥७१॥

अर्थ- जिस पुरुष के चित्त में आत्मस्वरूप की निश्चल धारणा है उसकी नियम से मुक्ति होती है। जिस पुरुष की आत्म स्वरूप में निश्चल धारणा नही है उसकी अवश्यक भाविनी मुक्ति नही होती है।

(समाधितंत्र)

९. संवर अनुप्रेक्षा

मिथ्यात्व का निरोधक सम्यक्त्व

चलमलिन मगाढं च वज्जिय सम्मत्त दिढकवाडेण ।
मिच्छत्तासव दार णिरोहो होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६१॥

अन्वयार्थ:-

जल मालिनं च अगाढं	-	चल मलिन और आगाढ़ दोषों से
वज्जिय	-	रहित
सम्मत्त दिढ कवाडेण	-	सम्यक्त्व रूपी दृढ़ कपाटों (कपाटो/दरवाजों) से
मिच्छत्तासवदार	-	मिथ्यात्व के आस्रव द्वार का
णिरोहो होदि	-	निरोध संवर होता है
ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं	-	ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥६१॥

भावार्थ- जिस प्रकार कोट में बाह्य मजबूत द्वारों को बंद कर देने से शत्रु सेना का प्रवेश नहीं हो पाता है ठीक इसी तरह चल मलिन अगाढ़ दोषों से रहित क्षायिक (सुदृढ़) सम्यक्त्व रूपी द्वारों को बंद कर देने से मिथ्यात्व का प्रवेश रुक जाता है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

• सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥७१॥
(पंचास्तिकाय ११३)

अर्थ- सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सहित व राग द्वेष रहित चारित्र रूप मोक्ष का मार्ग लब्धबुद्धि आत्मा ज्ञानी भेदविज्ञान की कला प्राप्त भव्य जीवों को प्राप्त होता है।

आस्रव द्वार के निरोधक हेतु

पंच महव्वय मणसा अविरमणं णिरोहणं हवे णियमा।
कोहादि आसवाणं दाराणि कसायरहिय पल्लगेहिं ॥६२॥

अन्वयार्थ:-

पंच महव्वय मणसा	- पंच महाव्रत युक्त मन से अर्थात् भाव सहित धारण किये गये पांच महाव्रतों से
णियमा अविरमणं	- नियम से अविरतों का
णिरोहो हवे	- निरोध हो जाता है और
कोहादि आसवाणं (णिरोहणं)	- क्रोधादि कषाय से होने वाला आस्रव का निरोध
कषाय रहिय दाराणि पल्लगेहिं	- कषाय रहित अर्थात् अकषाय रूप द्वारों के बंद हो जाने से होता है ॥६२॥

भावार्थ- अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत तथा अपरिग्रह महाव्रत इन पांच महाव्रतों को धारण करने से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह रूप अविरतों (पापों) का निरोध हो जाता है अर्थात् अविरति से होने वाला आस्रव रुक जाता है तथा क्रोध, मान, माया लोभ कषाय से होने वाला आस्रव अकषाय भाव अर्थात क्षमा, मार्दव, आर्जव और शौच स्वभाव रूप सुदृढ़ द्वारों के बंद हो जाने से रुक जाता है।

• सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरुढमग्गाणं॥
(पंचास्तिकाय ११५)

अशुभ और शुभ उपयोग के निरोधक हेतु

सुहजोगस्स पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स ।
सुह जोगस्स णिरोहो सुद्धुव जोगेण संभवदि ।।६३।।

अन्वयार्थः-

सुहजोगस्स पवित्ती	- शुभयोग की प्रवृत्ति
असुह जोगस्स संवरणं कुणदि	- अशुभ योग का संवर करती है और
सुहजोस्स णिरोहो	- शुभ योग का निरोध (संवर)
सुद्धुव जोगेण संभवदि	- शुद्धोपयोग से संभव है ।।६३।।

भावार्थ- शुभमन वचन काय रूप योगों से अशुभ मन, वचन, काय रूप योगों का अथवा इनसे होने वाला आस्रव रुक जाता है। अर्थात् अशुभ योग से होने वाला आस्रव का संवर हो जाता है। तथा शुभयोगों से होने वाला आस्रव का निरोध (संवर) शुद्धोपयोग से ही संभव है।

• भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स ।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णदि सो वि अण्णाणी ।।

• अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाइवि इंदत्तं ।
लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति ।।
(मोक्ष. पा. ७६-७७)

अर्थ- भरत क्षेत्र में पंचमकाल में ज्ञानी जीवों को धर्मध्यान होता है। जो कोई आतमस्वभाव में स्थित जीव उसे नहीं मानता है वह अज्ञानी है। आज भी इसी पंचमकाल में रत्नत्रय (तीनरत्नों) से शुद्ध (सहित) मुनि आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद और लौकान्तिक देव पद प्राप्त करते है। वहाँ से च्युत होकर मनुष्य होकर मोक्षपदपाते है।

ध्यान और संवर का कारण

सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं य होदि जीवस्स।
तम्हा संवर हेदू झाणोत्ति विचिंतए णिच्चं ।।६४।।

अन्वयार्थ:-

जीवस्स	- जीव को
जोगेण	- शुद्धोपयोग से
धम्मं य सुक्कं	- आध्यात्मिक या निश्चय धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान
तम्हा संवर हेदू झाणोत्ति	- इसलिये संवर का हेतु मुख्य कारण ध्यान है
णिच्चं विचिंतए	- इस प्रकार हमेशा विचार करना चाहिए ।।६४।।

भावार्थ- रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग का व्याख्यान शास्त्रों में आगम पद्धति (भाषा) व आध्यात्म पद्धति (भाषा) से किया गया है। आगम भाषा भेद रत्नत्रय की मुख्यता से कथन करता है। भेद व अभेद दोनों प्रकार के रत्नत्रय एक मात्र निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि के ही पाये जाते हैं। अन्य लोगों के नहीं। इन दोनों में कारण और कार्य का अंतर है। भेद रत्नत्रय कारण है अभेद रत्नत्रय कार्य है। भेद रत्नत्रय छट्टे गुणस्थान में होता है और अभेद रत्नत्रय सातवें से उपरिम गुण स्थानों में होता है। सातवें गुणस्थान के दो भेद हैं । स्वस्थानाप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त । स्वस्थानाप्रमत्त प्राय: सभी मुनिराजों को बनता रहता है किंतु सातिशय अप्रमत्त एक मात्र श्रेणी के सम्मुख मुनिराजों को ही होता है। आध्यात्मिक शास्त्रों में चौथे से सातवे गुणस्थान तक के जीव धर्म ध्यान के स्वामी कहे गये हैं । इसके आगे एक मात्र शुक्ल ध्यान के ही पाये (प्रभेद) क्रमश: पाये जाते हैं । छट्टे गुणस्थान तक जीव के परिणाम

बुद्धिपूर्वक विकल्प से युक्त होने के कारण सविकल्प होते हैं और इसके आगे सातवें आदि गुणस्थानों में निर्विकल्प होते हैं। अत: यह बात स्वत: सिद्ध हो जाती है कि सविकल्प अवस्था छठे गुणस्थान तक पाया जाने वाला धर्म ध्यान सविकल्प धर्मध्यान है। और इसके आगे सातवें गुणस्थान में पाया जाने वाला धर्म ध्यान निर्विकल्प धर्म ध्यान है। इसे ही निर्विकल्प समाधि व शुद्धोपयोग आदि कहा है। अत: शुद्धोपयोग से सप्तम गुणस्थान में निर्विकल्प धर्मध्यान होता है और इससे ही आगे आठवें आदि गुणस्थानों में शुक्ल ध्यान होता है। तथा इसके आगे ग्यारहवें आदि गुणस्थान में शुद्धोपयोग से ही शुक्ल ध्यान होता है।

किन्हीं - किन्हीं आचार्यों ने शुद्धोपयोग को शुक्ल ध्यान को अविनाभावी माना है। उनके अनुसार वहां यथाक्रम से शुद्धोपयोग से शुक्ल ध्यान जानना चाहिए ।।६४।।

• सुद-परिचिदाणुभूया सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा !
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ।।
(स. पा. ४)

• सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ।।
(सूत्र पा. ३)

• खपुष्पमथवा श्रृङ्गं खरस्यापि प्रतीयते।
न पुनर्देश कालेऽपि ध्यान सिद्धिर्गृहाश्रमे।।
(ज्ञानार्णव ४/१७)

निश्चय से आत्मा संवर रहित

जीवस्स ण संवरणं परमट्ठणएण शुद्धभावादो।
संवरभाव विमुक्कं अप्पाणं चिंतए णिच्चं ॥६५॥

अन्वयार्थ:-

परमट्ठ णएण	-	परमार्थ नय अर्थात् शुद्ध निश्चय नय से
जीवस्स शुद्ध भावादो	-	जीव का शुद्ध भाव भी
संवरणं संवरभाव विमुक्कं	-	(अपनी) आत्मा संवर भाव से रहित है ऐसा
णिच्चं	-	हमेशा
चिंतए	-	विचार करना चाहिए ॥६५॥

भावार्थ- शुद्ध निश्चय नय वस्तु के शुद्ध स्वभाव की मुख्यता से कथन करता है, इस नय से आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि आत्मा के स्वभाव है ही नहीं तो वह उसका कर्ता कैसे हो सकता है। अर्थात् इस नय से आत्मा संवर भाव से रहित है। ऐसा हमेशा विचार करना चाहिए।

• विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदोतच्चं।
विरला भावहितच्चं विरलाणं धारणा होदि ॥
(का. अ. २७९)

अर्थ- जगत में विरले मनुष्य ही तत्त्व को सुनते हैं। सुनने वालों में से विरले मनुष्य ही तत्त्व को ठीक -ठीक जानते हैं। जाननेवालों में से भी विरले मनुष्य ही तत्त्व की भावना सतत अभ्यास करते हैं और सतत अभ्यास करने वालों में से तत्त्व की धारणा विरले मनुष्यों को ही होती है।

१०. निर्जरा अनुप्रेक्षा

जिस कारण से संवर उसी से निर्जरा भी

बंधपदेसग्गलणं णिज्जरणं इदि जिणेहि पण्णत्तं।
जेण हवे संवरणं तेण दुणिज्जरणमिदि जाण ॥६६॥

अन्वयार्थ:-

बंधपदेसग्गलणं	- पूर्वबद्ध कर्मों का गलना
णिज्जरणं	- निर्जरा कहलाती है तथा
जेण संवरणं हवे	- जिन भावों से संवर होता है अथवा जो संवर के कारण है
तेण दुणिज्जरणं	- उन्ही भावों से निर्जरा भी होती है
इदि जाण	- ऐसा जानो
इदि जिणेहिं	- इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। ॥६६॥

भावार्थ- पूर्व बद्ध कर्मों का तप आदि के द्वारा निर्जीण होना निर्जरा कहलाती है। जिन भावों या कारणों से संवर होता है उन्हीं भावों से निर्जरा भी होती है।

यही बात तत्त्वार्थ सूत्र में भी कही है।

यथा - "तपसा निर्जरा च"

अर्थात् - सम्यक्तप से निर्जरा भी होती है और संवर भी होता है।

• कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो सम्मपरस्सवेरग्गो।
सुदभावेण तत्तिय तह्य सुदभावणं कुणह ॥१५१॥
(र. सा.)

निर्जरा के सविपाक अविपाक भेद

सा पुण दुविहा णेया सकाल पक्का तवेण कयमाणा ।
चदुगदियाणं पढमा वय जुत्ताणं हवे विदिया ॥६७॥

यह गाथा मूलाचार में इस प्रकार है-

रुद्धासवस्स एवं तवसा जुत्तस्स णिज्जरा होदि ।
दुविहा य सा वि भणिया देसादो सव्वदो चेव ॥७४६॥

अन्वयार्थः-

सा दुविहा	- वह निर्जरा दो प्रकार की है
सकाल पक्कापुण	- स्वकाल प्राप्त और
तवेण (पत्ता) कयमाणा	- तप के द्वारा प्राप्त
पढमा चादुगदियाणं	- पहली निर्जरा चारों गतियों के जीवों के होती है
विदिया	- और दूसरी निर्जरा ।
वय जुत्ताणं	- व्रतों से युक्त जीवों के होती है ॥६७॥

भावार्थ- निर्जरा के मुख्य दो भेद हैं ।

1. सविपाक निर्जरा
2. अविपाक निर्जरा

अपने-अपने समय में आस्रव पूर्वक कर्मों का निर्जीण होने को सविपाक निर्जरा कहते हैं । जो कि चारों गतियों के जीवों के निरंतर होती रहती है । तथा दूसरी निर्जरा समय के पूर्व तप आदि के द्वारा संवर पूर्वक होती है । उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं । यह व्रती जीवों के ही होती है ।

> • णाणेण झाण सिद्धि झाणादो सव्व कम्म णिज्जरणं ।
> णिज्जरण फलं मोक्खं णाणब्भा तदो कुज्जा ॥
> (र. सा. १५०)

११.धर्म अनुप्रेक्षा

श्रावक और मुनि धर्म के भेद

एयारस दस भेदं धम्मं सम्मत्त पुव्वयं भणियं ।
सागार-णागाराणां उत्तम सुह संपजुत्तेहिं ॥६८॥

अन्वयार्थ:-

सम्मत्त पुव्वयं एयारस	- सम्यक्त्व पूर्वक ग्यारह प्रतिमा रूप
सागार	- श्रावक और
दस भेद	- दस भेद से युक्त
णगाराणां	- गृह रहित अनगारों का
धम्मं	- धर्म है ऐसा
उत्तम सुह संपजुत्तेहि	- उत्तम सुख से सम्पन्न
भणियं	- जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥६८॥

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान ने चरणानुयोग की अपेक्षा धर्म के मुख्य दो भेद कहे हैं।

पहला श्रावक धर्म इसके दर्शन प्रतिमा आदि ग्यारह भेद हैं। दूसरा मुनि धर्म इसके उत्तम क्षमादि दस भेद हैं।

• इस दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु।
ते लहिय दिव्व-रयणं भूइ णिमित्तं पजालंति ॥
(का. अनु. ३००)

अर्थ- दुर्लभ मनुष्य-पर्याय को प्राप्त करके जो पापी इन्द्रियों के विषयों में रमते हैं वे मूढ़ दिव्य रत्न को पाकर उसे भस्म के लिए जलाकर राख कर डालते हैं।

श्रावक के ग्यारह धर्म (प्रतिमाएँ)

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य।
बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देवविरदेदे ॥६९॥

अन्वयार्थ:-

दंसण वय सामाइय	- दर्शन, व्रत, सामायिक
पोसह सचित्त राइभत्ते	- प्रोषध, सचित त्याग, रात्रि भुक्ति त्याग।
बम्हारंभ, परिग्गह	- ब्रह्मचर्य आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग
अणुमणं य उद्दिदट्ठ	- अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग
एदे दस विरद	- ये देशव्रत के ग्यारह स्थान हैं ॥६९॥

अर्थ-

(१) दर्शन प्रतिमा (२) व्रत प्रतिमा
(३) सामायिक प्रतिमा (४) प्रोषधोपवास प्रतिमा
(५) सचित्त त्याग प्रतिमा (६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा
(७) ब्रह्म चर्य व्रत प्रतिमा (८) आरंभ त्याग प्रतिमा
(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा (१०) अनुमति त्याग प्रतिमा
(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा

ये देशव्रती श्रावक के ग्यारह भेद हैं ॥६९॥

● सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहिं भावए॥
(मो. पा. ६२)

मुनियों के दशधर्म

उत्तम खम-मद्दव-ज्जव-सच्च-सउच्चं च संजमंचेव।
तव-चाग-मकिंचण्णं बम्हा इदि दसविहं होदि ॥७०॥

अन्वयार्थः-

उत्तम खम मद्दव ज्जव	- उत्तम, क्षमा, मार्दव, आर्जव
सच्च-सउच्च च संजमं	- सत्य, शौच और संयम
एव तव चाग	- इसी प्रकर तप त्याग
अकिंचण्णं च बम्हा	- आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य
इदि दस विहं होदि	- इस प्रकार धर्म के दस भेद होते हैं ॥७०॥

अर्थ-

(१)	उत्तम क्षमा	(२)	उत्तम मार्दव
(३)	उत्तम आर्जव	(४)	उत्तम सत्य
(५)	उत्तम शौच	(६)	उत्तम संयम
(७)	उत्तम तप	(८)	उत्तम त्याग
(९)	उत्तम आकिंचन्य	(१०)	उत्तम ब्रह्मचर्य

ये दस प्रकार धर्म हैं ॥७०॥

तत्त्वार्थ सूत्र में इसे निम्न प्रकार से भी कहा गया है।

उत्तम क्षमा मार्दवार्जव शौच सत्य संयम

तपस्त्यागाकिण्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्माः। ९/६

अर्थात्- (१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम शौच (५) उत्तम सत्य (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिंचन्य (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य

ये दस प्रकार के धर्म है।

उत्तम क्षमा धर्म

कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंग जदि हवेदि सक्खादं ।
ण कुणदि किं वि कोहो तस्स खमा होदि धम्मोत्ति ॥७१॥

अन्वयार्थ: -

जदि कोहुप्पत्तिस्स	- यदि क्रोध की उत्पत्ति का
सक्खादं बहिरंग हवेदि पुणो	- साक्षात् बाह्य कारण उपस्थित हो जाये तो भी
किंविकोहो ण कुणदि	- जो किंचित भी क्रोध नहीं करता है
तस्स खमा धम्मोत्ति	- उसके (उत्तम) क्षमा धर्म
होदि	- होता है ॥७१॥

भावार्थ- मुनि के क्रोध की उत्पत्ति के साक्षात् कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध रूप भाव नहीं होना समता होना उत्तम क्षमा धर्म है।

- उत्तमे तु क्षणं कोपो मध्यमे घटिकाद्वयम् ।
  अधमे स्यादहोरात्रं चाण्डालो मरणान्तक: ॥
  (स.श्लो.सं.)
- नास्ति काम समो व्याधि र्नास्ति मोह समोरिपु: ।
  नास्ति क्रोध समो वहिन र्नास्ति ज्ञान समं सुखं ॥
  (सारसमुच्चय)
- क्षम: श्रेय: श्रम: पूजा, क्षमा: शय्या: श्रम: सुख: ।
  श्रम: दानं क्षमा पवित्रं च, क्षमा मांगल्यं उत्तमम् ॥

उत्तम मार्दव धर्म

कुल-रुव-जाति-बुद्धिसु तव-सुद-सीलेसु गारवं किंचि ।
जो णवि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥७२॥

अन्वयार्थ:-

जो समणो	- जो श्रमण अर्थात् मुनि
कुल रुव जादि	- कुल, रूप जाति
बुद्धिसु	- बुद्धि
तव सुद	- तप श्रुत (शास्त्र ज्ञान) और
सीलेसु	- विभिन्न प्रकार के शीलों (स्वभावों में)
किंचि गारवं	- किंचित् भी अभिमान
णवि कुव्वदि	- नहीं करता है।
तस्स मद्दव धम्मं हवे	- उसका (वह) मार्दव धर्म है ॥७२॥

भावार्थ- मुनिराज के जो -(१) कुल (पितृपक्ष) (२) रूप (३) जाति (मातृपक्ष) (४) बुद्धि (अनेक प्रकार की कला रूप ऐश्वर्य) (५) तप (६) ज्ञान (७) शील (पूजा सम्मान) और (८) बल (शक्ति) पर किंचित भी अभिमान नहीं करने रूप उत्तम मार्दव धर्म होता है।

- उत्तम-णाण-पहाणो उत्तम-तवयरण-करण-सीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि मद्दव-रयणं भवे तस्स॥
(का.अ.३९५)

अर्थ- उत्कृष्ट ज्ञानी और उत्कृष्ट तपस्वी होते हुए भी जो।
मद नहीं करता वह मार्दव रूपी रत्न का धारी है॥

उत्तम आर्जव धर्म

मोत्तूण कुडिल भावं णिम्मल हिदएण चरदि जो समणो।
अज्जव धम्मो तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण ॥७३॥

अन्वयार्थ:-

जो समणो	- जो श्रमण/मुनि
कुडिल भावं मोत्तुण	- कुटिल भावों को छोड़कर
णिम्माल हिदाएण चरदि	- निमल हृदय से आचरण करता है
तस्स दु णियमेण	- उसी के अंदर ही नियम से
तइयो अज्जव धम्मो	- तीसरा आर्जव धर्म
संभवदि	- संभव है ॥७३॥

भावार्थ- जो मुनिराज मन, वचन, काय से छल कपट रूप कुटिल भावों का त्याग करके निर्मल पवित्र हृदय से जो सहज एवं सरल आचरण करते हैं उनके उत्तम धर्म होता है।

• बकवृत्तिं समालम्ब्य वञ्चकैर्वञ्चितं जगत्।
कौटिल्य कुशलैः पापैः प्रसन्नं कश्मलाशयैः ॥
(ज्ञानार्णव)

अर्थ- कुटिलता में चतुर मलिनचित्त पापी ठग बगले के ध्यान कीसी वृत्ति (क्रिया) का आलम्बन कर इस जगत को ठगते रहते है

• जन्म भूमि रविद्यानामकीर्तेर्वासमन्दिरम्।
पापपङ्कमहागर्तो निकृतिः कीर्तिता बुधैः ॥
॥ ज्ञानार्णव ॥

उत्तम सत्य धर्म

परसंतावयकारण - वयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं ।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ।।७४।।

अन्वयार्थ:-

जो भिक्खु	- जो भिक्षु/मुनि
पर संतावयकारण	- दूसरों को दुख के कारण भूत
वयणं मोत्तूण	- वचनों को छोड़कर
सपर हिद वयणं	- स्व- पर हितकारी वचनों को
वददि	- कहते हैं
तस्स दु सच्चं धम्मं	- उन्हें ही सत्य धर्म
हवे	- होता है ।।७४।।

भावार्थ- जो मुनि, दूसरों को संताप देने वाले वचनों का त्याग कर अपने व दूसरों के प्रति हितकारी वचन बोलते हैं वे सभी सत्य वचन ही उनके सत्य धर्म है।

• धर्मनाशे क्रियाधंवसे सुसिद्धान्तार्थ विप्लवे ।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूप प्रकाशने ।।
(ज्ञानार्णव ९/१५)

अर्थ- जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बिगड़ती हो तथा समीचीन सिद्धान्त का लोप होता हो उस जगह समी चीन धर्मक्रिया और सिद्धान्त के प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिए क्योंकि यह सत्पुरुषों का कार्य है।

उत्तम शौच धर्म

कंखाभाव णिवित्तिं किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं ॥७५॥

अन्वयार्थ:-

जो परममुणी	- जो श्रेष्ठ मुनि हैं वे
कंखा भाव णिवित्तिं किच्चा	- इच्छा भावों की निवृत्ति करते हैं तथा
वेरग्गभावणा जुत्तो	- वैराग्य भावना से युक्त होकर
वट्टदि	- वर्तन/आचरण/प्रवृत्ति करते हैं
तस्स दु	- उनके ही
सोच्चं धम्मं हवे	- शौच धर्म हो ॥७५॥

भावार्थ- जो परम निर्ग्रन्थ मुनि, बाह्य समस्त पदार्थों के ग्रहण करने कीइच्छा का त्याग कर वैराग्य भाव से युक्त होते हैं उनके उत्तम शौच धर्म होता है।

- सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विषमं।
  जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तधा॥
  (प्र. सा. १/७६)

- सम-संतोस-जलेणं जो धोवदि तिव्व-लोह-मल-पुंजं।
  भोयण-गिद्धि-विहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं॥
  ॥का. अनु. ३९७॥

अर्थ - जो समभाव और संतोष रूपी जल से तृष्णा और लोभ रूपी मल के समूह को धोता है तथा भोजन गिद्धि नहीं करता उसके निर्मल शौच-धर्म होता है।

उत्तम संयम धर्म

वद समिदि पालणाए दंडच्चाएण इंदियजयेण ।
परिणाम माणस्स पुणो संजम धम्मो हवे णियमा ॥७६॥

अन्वयार्थ:-

वद समिदि पालणाए	- व्रत समिति के पालन से
दंडच्चाएण पुणो	- मन, वचन काय रूप दण्ड के त्याग से और
इंदिय जयेण	- इंद्रिय विजय रूप
परिणाम माणस्स	- परिणाम से युक्त (मुनि) के
णियमा	- नियम से
संजय धम्मो हवे	- संयम धर्म होता है ॥७६॥

भावार्थ- जो मुनि अहिंसा आदि पांच महाव्रत तथा ईर्या समिति आदि पांच समितियों का पालन करते हैं। अशुभ मन, वचन, काय, रूप दण्डों का त्याग तथा स्पर्शन आदि इंद्रियों के विषयों को जीतने रूप विशुद्ध परिणामों से युक्त हैं। उनके ही उत्तम संयम धर्म होता है।

● नृजन्म: फलं सारं, यदेतज्ज्ञान सेवनम् ।
अनिगूहित: वीर्यस्य, संयमस्य च धारणम् ॥
(सा. समु.)

अर्थ- इस मानव जन्म का यही सार है कि अपनी शक्ति को न छिपाकर संयम को धारण करना और आत्मज्ञान की भावना करना।

उत्तम तप धर्म

विसय कसाय विणिग्गह भावं काऊण झाण सज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण ॥७७॥

अन्वयार्थ:-

जो	- जो मुनि
विसय कसाय विणिग्गह	- विषय कषाय को निग्रह कर
झाण सज्झाए भावं काऊण	- ध्यान अध्यान रूप भावों को करके
अप्पाणं भावइ	- आत्मा को भाते हैं।
तस्स णियमेण	- उनके नियम से
तवं होदि	- तप होता है ॥७७॥

भावार्थ- जो मुनि पांचों इंद्रियों के (8+5+2+5+7=27) सत्ताईस विषयों को तथा क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चारों कषायों को नष्ट कर अर्थात् इनके वश में न होते हुए स्वध्याय और ध्यान को करते हैं। और हमेशा अपनी आत्मा का चिंतन करते हैं। उनके ही नियम से उत्तम तप धर्म होता है।

• धुव सिद्धि तित्थयरो चउणाण जुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाण जुत्तोवि ॥
(मो. पा)

अर्थ- चार ज्ञान के धारी तीर्थंकर भी क्यों न हो उन्हें भी तपश्चरण के बिना, ध्रुव सिद्धि नहीं होती अर्थात् मुक्ति नहीं होती दिगम्बरी दीक्षा लेकर उन्हें भी तप करना पड़ता है।

उत्तम त्याग धर्म

णिव्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु ।
जो तस्स हवे चागो भणिदं जिणवरिंदेहि ॥७८॥

अन्वयार्थ:-

जो सव्व दव्वे सु	-	जो सम्पूर्ण द्रव्यों में
मोहं चइऊण	-	मोह का त्याग करके
तियं णिव्वेग भावइ	-	मन वचन काय से निर्वेग भावना को भाते हैं
तस्स चागो हवे	-	उनको त्याग धर्म होता है
इदि जिणवरिंदेहि	-	ऐसा जिनवरेन्द्रों ने
भणिदं	-	कहा है ॥७८॥

भावार्थ- जो मुनि विश्व के संपूर्ण चेतन अचेतन द्रव्यों के प्रति मोह का त्याग करके मन, वचन, काय से संसार शरीर भोगों से विरक्ति रूप निर्वेग भावना को भाते हैं। उसके उत्तम त्याग धर्म होता है ऐसा जिनवरेन्द्रों ने कहा है।

विराग-पीयूष

- जो तुम्हारा नहीं था, और न तुम्हारा है और न तुम्हारा होगा, उसे ग्रहण करोगे तो वजनदार होकर डूब जाओगे। बाहरी वजन के साथ अंदर भी देखो। व्यक्ति आदि अतरंग में आसक्ति से भरा है तो नियम से वह नीचे जायेगा क्योंकि आसक्ति या मूर्च्छा का नाम ही परिग्रह है

(पर्यूपाग निधि कृति से)

उत्तम आकिञ्चन्य धर्म

होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं।
णिद्दंदेण दु वहदि अणयारो तस्स अकिंचण्हं ॥७९॥

अन्वयार्थ:-

णिस्संगो होऊण	- परिग्रह से रहित होकर
य सुहदुहदं	- और सुख दुःख देने वाले
णियभावं णिग्गहित्तु	- निजभावों का निग्रह करके
णिद्दंदेण दु वहदि	- निर्द्वंद भावों को धारण करते हैं
तस्स अणयारो	- उन अनगार (मुनि के)
अकिंचण्हं	- आकिंचन्य धर्म होता है ॥७९॥

भावार्थ- जो मुनि बाह्य आभ्यंतर समस्त परिग्रह से रहित होकर अपने मन को सुख दुःख के क्षणों में रागद्वेष से अलिप्त रखते हैं। तथा निर्द्वन्द भाव (कलह/झगड़ों से रहित भाव) का धारण करते हैं। उन अनगार (ग्रहस्थी से रहित मुनि) के आकिंचन्य धर्म होता है।

• अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाण मइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि ॥
(समयपाहुड ३८)

अर्थ- जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप परिणत आत्मा वह ऐसा जानता है मैं एक हूँ शुद्ध हूँ ज्ञान दर्शनमय निश्चय कर सदाकाल अरूपी हूँ अन्य पर द्रव्य परमाणु मात्र भी मेरा कुछ भी नहीं है।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

सव्वंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं ।
सो बंभचेर भावं सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं ॥७०॥

अन्वयार्थ:-

इत्थीसं सव्वंगं पेच्छंतो	- स्त्रियों के सम्पूर्ण अंगों को देखता हुआ भी जो
तासु दुब्भावं	- उनके विषय में दुर्भाव को
मुयदि	- छोड़ देता है
सो खलु दुद्धरं	- वह ही नियम से बड़ा कठिन
बंभचेर भावं	- ब्रह्मचर्य धर्म रूप भाव को
धरिदुं सक्कदि	- धारण करने में समर्थ में होता है ॥७०॥

भावार्थ- जो मुनि स्त्रियों के विभिन्न अंगो को देखता हुआ भी उनके विषय में दुर्भावों को छोड़ देता है। वही अत्यन्त कठिनाई से धारण करने योग्य उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म को धारण करने में समर्थ होते हैं। अन्य नहीं।

● कालकुटादहं मन्ये स्मरसंज्ञं महाविषम्।
स्यात्पूर्वं सप्रतीकारं निःप्रतीकार मुत्तरम् ॥
(ज्ञानार्णव)

अर्थ- आचार्य महाराज कहते है कि इस कामस्वरूपी विष को मैं कालकूट (हलाहल) विष से भी महाविष मानता हूँ क्योंकि जो पहिला कालकूट विष है वह तो उपाय करने से मिट जाता है परन्तु दूसरा जो कामरूपी विष है। वह उपाय रहित है। अर्थात् इलाज करने से भी नहीं मिटता हैं।

मुनि धर्म से निर्वाण की प्राप्ति

सावय धम्मं चत्ता जदिधम्मे जो दु वट्टए जीवो ।
सो णय वज्जदि मोक्खं धम्मं इदि चिंतए णिच्चं ॥८१॥

अन्वयार्थ:-

सावय धम्मं चत्ता	- श्रावक धर्म को त्यागकर
जो जीवो	- जो जीव
जदि धम्मे दु वट्टए	- यति अर्थात् मुनि धर्म में वर्तन करता है धारण करता है
सो मोक्खं णय वज्जदि	- वह मोक्ष को नहीं छोड़ता
इदि णिच्चं चिंतए	- ऐसा हमेशा चिंतन करो ॥८१॥

भावार्थ- जो भव्य श्रावक धर्म को त्याग कर मुनि धर्म को अंगीकार कर उस रूप अपनी परिचर्या करता है वह अवश्य ही मुक्ति श्री को प्राप्त करता है, क्योंकि बिना सच्चे मुनि हुये मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा निरंतर चिंतन करना चाहिए।

• णावि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो ।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥
(अष्टपाहुड)

अर्थ- जिनशासन में वस्त्रधारी की मुक्ति संभव नहीं, चाहे तीर्थंकर भी क्यों न हो बिना दिगम्बरी (निर्ग्रंथ) दीक्षा धारण किये मोक्ष नही हो सकता, नग्नता (निर्ग्रंथता) ही मोक्ष मार्ग है शेष सभी उन्मार्ग है।

निश्चय से द्विविध धर्मरहित आत्मा

णिच्छयणयेण जीवो सागारणगारधम्मदो भिण्णो।
मज्झत्थ भावणाए सुद्धप्पं चिंतए णिच्चं ॥८२॥

अन्वयार्थ:-

णिच्छय णयेण जीवो	- निश्चय नय से यह जीव (क्रिया काण्ड रूप)
सागारणगार धम्मदो	- सागार (श्रावक) और अनगार (मुनि) धर्म से
भिण्णो	- रहित है इसलिए इसमें
मज्झत्थ भावणाए	- माध्यस्थ भावना के द्वारा अर्थात् माध्यस्थ भाव रखते हुए
णिच्चं सुद्धप्पं	- चिंतन करना चाहिए
चिंतए	- चिंतन करना चाहिए ॥८२॥

भावार्थ- शुद्ध निश्चय नय से यह जीव सागार अर्थात श्रावक धर्म और अनगार अर्थात् मुनि धर्म के संकल्प विकल्पों से भिन्न हैं अत: इसमें माध्यस्थ भाव रखते हुए शुद्धात्मा का चिंतन करना चाहिए।

> • जं अण्णाणी कम्मं, खवेदि भवसयसहस्स कोडिहिं।
> तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण ॥
> (प्रवचन सार)
>
> **अर्थ-** अज्ञानी जितने कर्म को लाखों करोड़ो वर्षो में खपाते है, तीन गुप्ति से युक्त ज्ञानी मुनि उतने कर्म को उच्छ्वासमात्र में ही क्षय कर देते है।

१२ बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा

बोधि की प्रप्ति अत्यंत दुर्लभ

उप्पज्जदि सण्णाणं जेण उवाएण तस्सुवायस्स ।
चिंता हवेइ बोहो अच्चंतं दुल्लंह होदि ॥८३॥

अन्वयार्थ:-

जेण उवाएण	-	जिस उपाय से
सण्णाणं उप्पज्जदि	-	सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है
तस्स उवायस्स	-	उस उपाय की
चिंता हवेइ बोहो	-	चिंता करना बोधि है
अच्चंतं दुल्लहं	-	जो अत्यन्त दुर्लभ
होदि	-	होता है ॥८३॥

भावार्थ- जिस उपाय से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपाय की चिंता करना बोधि है जो अत्यन्त दुर्लभ है।

• सुप्रापं न पुन: पुंसां बोधिरत्नं भवार्णवे ।
हस्ताद्भ्रष्टं यथा रत्नं महामूल्यं महार्णवे ॥१२॥
(ज्ञानार्णव:)

अर्थ- यह जो बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप रत्नात्रय है, संसार रूपी समुद में प्राप्त होना सुगम नही है, किन्तु अत्यंत दुर्लभ है इसको पाकर भी जो खो बैठते हैं, उनको हाथ में रक्खे हुये रत्न को बड़े समुद्र में डाल देने पर जैसे फिर मिलना कठिन है, उसी प्रकार सम्यग् रत्नत्रय का पाना दुर्लभ है।

स्वद्रव्य उपादेय है ऐसा निश्चय, सम्यग्ज्ञान है

कम्मुदयंज पज्जाया हेयं खाओवसमियणाणं तु।
सगदव्वमुपादेयं णिच्छयमिदि होदि सण्णाणं ॥८४॥

अन्वयार्थ:-

णिच्छय	- निश्चय नय से
कम्मुदयज	- कर्म के उदय से होने वाली
पज्जाया तु	- राग द्वेष मोह रूप पर्याय और
खाओवसमिय णाणं	- क्षायोपशमिक ज्ञान ये सभी
हेय	- छोड़ने योग्य हैं और
सण्णाणं	- सम्यग्ज्ञान स्वभाव है
सगदव्वं	- एवं द्रव्य है
इदि उवादेयं होदि	- इसलिये वही उपादेय होता है ॥८४॥

भावार्थ- निश्चय नय से चारित्र मोह कर्म के उदय से होने वाली राग द्वेष मोह रूप पर्याय तथा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले ज्ञान हेय हैं। छोड़ने योग्य हैं। किंतु एक मात्र क्षायिक केवलज्ञान सच्चा ज्ञान है। वह ही हमारा अपना निज स्वभाव रूप ज्ञान है। अत: उपादेय है ग्रहण करने योग्य है।

• नरकान्ध महाकूपे पततां प्राणिनां स्वयम्।
धर्म एव स्वसामर्थ्याद्दते हस्तावलम्बनम् ॥१३॥
(ज्ञानार्णव)

अर्थ- नरकरूपी महा अंधकूप में स्वयं गिरते हुये जीवों को धर्म ही अपने सामर्थ्य से हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) देकर बचाता है।

केवल आत्मा ही स्वद्रव्य है

मुलुत्तयपयडीओ मिच्छत्तादी असंखलोग पिरणामा।
परदव्वं सगदव्वं अप्पा इदि पिच्छयणाएण ॥८५॥

अन्वयार्थ:-

णिच्छयणाएण	-	निश्चय नय से
मिच्छत्तादी असंखलोग	-	मिथ्यात्वादि असंख्यात लोक प्रमाण
परिणामा	-	परिणाम
मुलुत्तय पयडीओ	-	मूल और उत्तर प्रकृतियाँ
पर दव्वं	-	पर द्रव्य है/तथा
अप्पा सद दव्वं	-	अपनी आत्म स्वद्रव्य है।
इदि	-	ऐसा जानना चाहिए ॥८५॥

भावार्थ- शुद्ध निश्चय नय से मिथ्यात्वादि असंख्यात् लोक प्रमाण परिणाम कर्मों की आठ मूल और एक सौ अड़तालीस उत्तर प्रकृति रूप में विभक्त है। ये सभी परिणाम व पौद्गलिक कर्म प्रकृतियां पर द्रव्य हैं और अपनी आत्मा स्व द्रव्य है ऐसा जानना चाहिए।

• रयणत्तय-संजुत्तो जीवो वि हवेइ उत्तम तित्थं।
संसारं तरइ जदो रयणत्तत-दिव्व-णावाए ॥१९१॥

अर्थ- रत्नात्रय से सहित यही जीव उत्तम तीर्थ है क्योंकि वह रत्नात्रय रूपी दिव्य नावसे संसार को पार करता है।

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

निश्चय में हेयोपादेय का विकल्प नहीं

एवं जायदि णाणं हेयमुपादेय णिच्छये णत्थि।
चिंतिज्जइ मुणि बोहिं संसार विरमणट्ठे य ॥८६॥

अन्वयार्थ:-

एवं णिच्छये	- इस प्रकार निश्चय नय से
हेयमुपादेय	- हेय और उपादेय रूप संकल्प और विकल्पों को
जायदि	- उत्पन्न करने वाला
णाणं	- क्षायोपशमिक ज्ञान
णत्थि	- (आत्मा स्वरूप) नहीं है इसलिये
संसार विरमणट्ठेय	- संसार से विरक्त
मुणि	- मुनि को
बोहिं चिंतिज्जइ	- (केवल ज्ञान रूप) बोधि का चिंतन करना चाहिए ॥८६॥

भावार्थ- इस तरह से निश्चय नय से हेय और उपादेय रूप संकल्प विकल्पों को उत्पन्न करने वाला क्षायोपशमिक ज्ञान निजी स्वभाव नहीं है इसलिए संसार से विरक्त मुनि को निज स्वभाव रूप क्षायिक केवलज्ञान रूपी बोधि का चिंतन करना चाहिए।

• धर्मः कामदुधा धेनुर्धर्मश्चिन्तामणिर्महान।
धर्मः कल्पतरुः स्थेयान् धर्मो हि निधिरक्षयः ॥२/३४॥
(आदिपुराण)

अर्थ- मनचाही वस्तुओं को देने के लिये धर्म ही कामधेनू है, धर्म ही महान चिन्तामणि है, धर्म ही स्थिर रहने वाला कल्पवृक्ष है और धर्म ही अविनाशी निधि है।

अनुप्रेक्षाएँ ही प्रतिक्रमण आदि है

उपसंहार

बारस अणुपेक्खाओ पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं।
आलोयणं समाहिं तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ॥८७॥

अन्वयार्थ:-

बारस अणुपेक्खाओ	-	ये बारह अनुप्रेक्षायें ही
पच्चक्खाणं पडिकमणं	-	प्रत्याख्यान हैं, प्रतिक्रमण हैं
आलोयणं	-	आलोचना है
तहेव	-	तथा ये इसी प्रकार से
समाहिं	-	समाधि हैं
तम्हा	-	इसलिये (इन)
अणुवेक्खं	-	अनुप्रेक्षाओं का हमेशा चिंतन करना चाहिए ॥८७॥

भावार्थ- ये बारह अनुप्रेक्षाऐं ही वास्तव में प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण, आलोचना तथा समाधि है। अत: इनका हमेशा चिंतन करना चाहिए।

• णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहि वज्जिज्जो ॥
(नि. सा. १५६)

अर्थ- अनेक प्रकार के जीव हैं, कर्म भी अनेक प्रकार के हैं और लब्धि के भी नाना प्रकार हैं। इसलिए स्वसमय और परसमय के द्वारा वचनों का विवाद छोड़ देना चाहिए।

ये क्रियाएं अहोरात्र करें

रत्तिदिवं पडिकमणं पच्चक्खाणं समाहि सामइयं ।
आलोयणं पकुव्वदि जदि विज्जदि अप्पणो सत्ती ॥८८॥

अन्वयार्थ:-

अप्पणो जदि सत्ती विज्जदि	- यदि जितनी अपनी शक्ति है उसके अनुसार
रत्ति दिवं	- दिन रात
पडिकमणं पच्चक्खाणं	- प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान
समाहि सामइयं	- समाधि, सामायिक
आलोयणं पकुव्वदि	- आलोचना को अच्छी तरह से करना चाहिए ॥८८॥

भावार्थ- अपनी जितनी शक्ति है उसके अनुसार अहोरात्र, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, सामायिक, आलोचना को अच्छी तरह से करना चाहिए।

• ईसा भावेण पुणो, केई णिंदंति सुंदरं मग्गं।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्तिं मा कुणइ जिणमग्गे ॥
(नियमसार १८६)

अर्थ- कोई लोग मिथ्यात्व के उदय से कलुषित चित्त हुये ईर्ष्याभाव से सुन्दर, अनेकांत स्वरूप, सार्वभौम जिन शासन की निंदा करते हैं, उस निर्दोष शासन में भी दोष प्रगट करते हैं, वे अवर्णवाद करने वाले लोग दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्व) की सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण स्थिति का बंध कर लेते हैं। उन एकांतवादी निंदक जनों के वचन सुनकर हे भव्योत्तमा आप लोग स्वर्ग-मोक्ष को देने वाले जिनमार्ग में अभक्ति अथवा अविश्वास मत करो।

जो भी मोक्ष गए बारह भावना के चिंतवन से

मोक्खंगया जे पुरिसा अणाइकालेण बारअणुपेक्खं।
परिभाविऊण सम्मं पणमामि पुणो पुणो तेसिं ॥८९॥

अन्वयार्थ:-

अणाइकालेण	- अनादिकाल से आज तक
जे पुरिसा	- जितने भी पुरुष
मोक्खगया	- मोक्ष गये हैं वे सब
बारअणुपेक्खं	- इन बारह अनुप्रेक्षाओं को
परिभाविऊण	- अच्छी तरह से भा करके ही मोक्ष गये हैं इसलिये मैं (कुंद कुंदाचार्य)
तेसिं	- उन सभी को
सम्मं	- विधि पूर्वक
पुणो पुणो पणमामि	- बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥८९॥

भावार्थ- अनादिकाल से आज तक जितने भी पुरुष मोक्ष गये हैं वे सब इन बारह अनुप्रेक्षाओं को अच्छी तरह से भा करके ही गये हैं। इसलिये मैं (कुंद कुदांचार्य) उन सभी (सिद्धों) को विधि पूर्वक बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

• जो रयणत्तय-जुत्तो खमादि-भावेहिं परिणदो णिच्चं।
सव्वत्थ वि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ॥
(का. अ. ३९२)

अर्थ- जो रत्नत्रय से युक्त होता है, सदा उत्तमक्षमा आदि भावों से सहित होता है और सब में मध्यस्थ रहता है वह साधु है और वही धर्म है।

अनुप्रेक्षा माहात्म्य

किं पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले।
सिज्झिहदि जे भविया तं जाणह तस्स माहप्पं ।।९०।।

अन्वयार्थ:-

किं बहुणा पलविएण	- बहुत कहने से क्या संक्षेप में इतना ही समझो कि
गये काले जे णरवरा सिद्धा	- भूतकाल में जो भी सिद्ध हुये हैं और
जे भविया सिज्झिहदि	- और भविष्य में भी जो भव्य सिद्ध होगें।
तं तस्स महाप्पं	- वह सब इन बारह अनुप्रेक्षाओं का ही महात्म्य हैं।
जाणह	- ऐसा जानो ।।९०।।

भावार्थ- बहुत कहने से क्या प्रयोजन संक्षेप में इतना ही समझो कि भूतकाल में जो भी आज तक सिद्ध हुए है और भविष्य काल में भी जो भव्य सिद्ध होगे। वह सब बारह अनुप्रेक्षाओं का ही महात्म्य है। ऐसा जानो।

• विध्याति कषायाग्निर्विगलति रागो विलीयते ध्वान्तम्।
उन्मिषति बोधदीपो हृदि पुंसां भावनाभ्यासात् ।।
(ज्ञानार्णव ७)

अर्थ- इन द्वादश भावनाओं के निरंतर अभ्यास करने से पुरुषों के हृदय में कषाय रूप अग्नि बुझ जाती है तथा परद्रव्यों के प्रति राग भाव गल जाता है और अज्ञानरूप अंधकार का विलय होकर ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश होता है।

अंतिम निवेदन

भावना भाने का फल

इदि णिच्छयववहारं जं भणियं कुंद कुंदमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं ॥९१॥

अन्वयार्थ:

इदि	- इस प्रकार से
मुणिणाहे कुंद कुंद	- मुनियों के नाथ कुंद कुंद आचार्य श्री ने
जं णिच्छयववहारं	- निश्चय और व्यवहार को
भणियं	- कहा है उसे
जो सुद्धमणो भावइ	- जो शुद्ध मन से भाता है
सो परम णिव्वाणं	- वह परम निर्वाण (मोक्ष) को
पावइ	- प्राप्त करता है ॥९१॥

भावार्थ- इस प्रकार से मुनियों के नाथ/ स्वामी / नायक कुंद कुंद आचार्य श्री ने निश्चय और व्यवहार नय से बारह अनुप्रेक्षाओं को कहा है।

उसे जो शुद्ध मन से भाता है, चिंतन करता है वह परम निर्वाण को प्राप्त होता है, करता है।

-इति-

● दीव्यन्नाभिरयं ज्ञानी भावनाभिर्नि रन्तरम्।
इहैवाप्नोत्यनातङ्क सुखमत्यक्षमक्षयम् ॥
(ज्ञानार्णव)

अर्थ- इन बारह भावनाओं से निरंतर रमते हुए ज्ञानीजन इसी लोक में रोगादिक की बाधारहित अतीन्द्रिय अविनाशी सुख को पाते हैं अर्थात् केवलज्ञानानन्द को पाते है।